श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक"

भूमिका

हिन्दी संसार में कौन ऐसा है जो कुशल कलाकार श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" से अपरिचित हो। आपके समान सफल सामाजिक चित्रकार हिन्दी साहित्य में इने-गिने ही हैं। समाज का यथार्थ चित्र खींचने और उसकी समस्याओं को सुलझाने में आप अद्वितीय हैं। इधर बहुत दिनों से "कौशिक" जी की रचनाओं का एक भी संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। आशा है कि प्रस्तुत संग्रह इस कमी को पूरी करेगा। यद्यपि ये रचनाएँ पहले भी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं; परन्तु संग्रह के रूप में ये नितांत नवीन हैं। इस संग्रह की कहानियाँ इस बात को पूर्णतयः स्पष्ट कर देती हैं कि "कौशिक" जी किसी भी चित्र को अपने कुशल हाथों से चित्ताकर्षक एवं कलापूर्ण बना सकते हैं। केवल समाज का चित्र ही नहीं वरन् मानव-चरित्र के निगूढ़ रहस्य का चित्रण भी वे बड़े मार्मिक ढंग से करते हैं। इनकी कहानियाँ हृदय पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ देती हैं। यह गुण प्रस्तुत संग्रह में भी कूट-कूटकर भरा हुआ है। परंतु इन कहानियों का वास्तविक मूल्यांकन साहित्य के मर्मज्ञ समालोचक ही कर सकते हैं, और समय ही बतलायेगा कि लोगों ने इस संग्रह को कितना अपनाया।

साहित्य भवन लिमिटेड,
१५–७–४२

पुरुषोत्तमदास टंडन
मंत्री

सूची

पेरिस की नर्तकी

गँवार

हेमन्त ऋतु की संध्या थी। अस्ताचल पर लटकते हुए सूर्य की सुनहरी किरणें हरे-भरे खेतों को एक अपूर्व शोभा प्रदान कर रही थीं। इसी समय मंगलपुर गाँव के ज़मींदार पं० रामाधीन पाठक वायु-सेवन के लिए निकले। पाठक जी की वयस ४४, ४५ वर्ष के लगभग होगी। नाटे परन्तु गठे हुए शरीर के आदमी थे। वर्ण गेहुआँ; आँखें बड़ी और उबली हुई, छोटी मूँछें। शरीर पर बंद गले का ऊनी कोट, धोती, सिर पर ऊनी फोल्डिंग टोपी, पैरों में फुल-स्लीपर। हाथ में बाँस का मोटा डंडा। पाठक जी के पीछे-पीछे एक गुड़ैत कंधे पर लम्बी लाठी रक्खे अपने देहाती जूतों से चर्र-मर्र शब्द करता हुआ चल रहा था। घूमते-घूमते पाठक जी खेतों के मध्य में आम तथा महुए के वृक्षों से घिरी हुई भूमि पर पहुँचे। इस भूमि पर एक बड़ा कुँआ था जिससे खेत सींचने का काम लिया जाता था। कुँए से हटकर निकट ही एक फूस की झोपड़ी थी। झोपड़ी के सामने धूनी लगी हुई थी। पाठक जी के इस स्थान पर पहुँचते ही कुछ दूर पर खेतों की मेड़ पर से लपक कर आता हुआ एक वृद्ध किसान दिखाई पड़ा। गुड़ैत किसान को देखकर पाठक जी से बोला—"सिवनाथ काका आ रहे हैं।"

पाठक जी ने केवल "हूँ" कहकर गुड़ैत की बात का समर्थन किया। शिवनाथ काका जब पाठक जी के निकट पहुँच गये तो बोले—"पालागौं पण्डित जू।" पाठक जी ने किंचित् मुस्कराकर कहा—"आनन्द रहो! काहे को दौड़े आये ठाकुर! अपना काम करते रहते।"

"कौन काम है। एक तो मालिक कभी-कभी फेरा करते हैं—काम तो लगा ही रहता है—सरकार रोज-रोज थोड़ ही आते हैं।" यह कहता हुआ वृद्ध किसान लपककर अपनी झोपड़ी में घुस गया और एक छोटी सी चारपाई निकाल लाया। खुली जगह में चारपाई बिछाकर बोला—आओ सरकार थोड़ा सुस्ता लो।"

"तुम तो बड़ी तकलीफ़ करते हो ठाकुर।"

"कौन तकलीफ है नम्बरदार। सरकार के दर्शन हो गये सुख मिला। तकलीफ का कौन काम।"

पाठक जी चारपाई पर बैठ गये और चारों ओर दृष्टि दौड़ाते हुए बोले—"तुम्हारी खेती तो अच्छी है ठाकुर। तुम परिश्रम भी तो बहुत करते हो।"

गुड़ैत बोल उठा—"चार आदमियों का काम यह अकेले करते हैं मालिक। गाँव छोड़े यहाँ जंगल में पड़े रहते हैं।"

"हाँ भाई शिवनाथ सिंह, तुम गाँव में क्यों नहीं रहते?"

"बस्ती में चित्त नहीं लगता सरकार। हमें यहीं अच्छा लगता है। लड़के बहुत ज़िद करते हैं कि घर चलकर रहो, पर हमारा वहाँ चित्त ही नहीं लगता। घर में बहू बेटियाँ हैं। बहुत संकोच होता है। भीतर जाओ तो खँखार कर जाओ, बहू बेटियाँ घूँघट काढ़े-काढ़े दिक्क होती हैं। इससे यहीं अच्छा है। चाहे नंगे पड़े रहो कोई संकोच नहीं।"

"जबसे इनकी घरवाली का पीछा हुआ तब से यहीं रहने लगे! घरवाली मरे पीछे सायत चार पाँच महीने घर में रहे हों—काहे काका!" गुड़ैत ने कहा।

"हाँ, छः महीने रहे थे।"

"तीज-त्योहार के दिन गाँव जाते हैं, सो भी जरा देर को।"

"तुम्हें यहाँ डर नहीं लगता?"

"कौन डर है। यहाँ धरा ही क्या है। बाघ भेड़िये यहाँ हैं नहीं, फिर डर काहे का?"

"भूत प्रेत का?"

"अरे सरकार, हम खुद प्रेत हो रहे हैं। प्रेत हमारा क्या कर सकता है। एक दिन मँहगू रात में इधर से गाँव की ओर जा रहा था। हम खेत से इधर आ रहे थे। अँधेरा घुप था। सो हमें देखकर सरकार वह भागा। हम समझे कोई चोर है। हमने ललकारा—तो वह और जान लेकर भागा। दूसरे दिन आकर हमसे बोला—'काका तुम थे, हमें न मालूम था। हम तो कल डर गये कि न जाने कौन बला है।' सो सरकार यहाँ तो हमी भूत प्रेत हैं।"

पाठक जी हँसते हुए बोले—"बात तो ठीक कहते हो।"

इसी समय एक तेइस चौबीस वर्ष का युवक एक पीतल की थाली, कपड़े से ढकी हुई लेकर पहुँचा। शिवनाथ सिंह बोला—"जाओ बबुआ भीतर ढक कर धर आओ—तसला ढाक देना।"

"खाना घर से ही आता है?"

"हाँ—इस बखत पराठे बनकर आ जाते हैं।" शिवनाथ सिंह ने कहा—

"और सबेरे?"

"सबेरे कभी यहीं रोटी दाल बना लेते हैं, कभी गुड़ खा कर रह जाते हैं। अलसा जाते हैं तो नहीं बनाते। गुड़ खा लिया, सत्तू खा लिये। अब कौन खाना सरकार! पेट भरना है। आपके चरनों की दया से बहुत खाया पिया। अब ये लड़के खाँय-पियें। हमें तो पेट भरने से मतलब है।"

युवक थाली रखकर बाहर आ गया था। वह बोल उठा—"हम तो बहुत कहते हैं सरकार घर पर रहो पर यह मानते ही नहीं।"

"घर पर क्या रहें, क्या धरा है घर पर ? कोई बात करने वाला भी तो हो ! बहुएँ बेचारी और परेशान रहती हैं। खुलकर उठने बैठने नहीं पातीं; हम भी बँधे से रहते हैं। यहाँ रहने से हमें भी आराम है। यह अच्छा—या वहाँ रह कर तकलीफ उठाना अच्छा ?"

"और सब लोग रहते हैं या नहीं ! वे सब कैसे रहते हैं ?" युवक बोला—

"रहते होंगे। उन्हें अच्छा लगता है—रहते हैं, हमें नहीं अच्छा लगता। अब सरकार इन्हें हमारे यहाँ रहने से इतनी परेशानी है कि यहाँ इस बखत खाना पहुँचाना पड़ता है—बस ! इतनी सी बात के लिए यह हमें वहाँ रखना चाहते हैं।"

"हमें कौन परेशानी है—हमें कहो तो दिन में चार दफे आवें-जावें, और आते जाते ही हैं। घर में थोड़े ही पड़े रहते हैं। काम तो यहीं है।" युवक ने कहा।

गुड़ैत बोल उठा—"देखो बबुआ, एक बात तो हम भी कहेंगे। काका के यहाँ रहने से तुम्हारी खेती गाँव ऊपर रहती है। इतना गल्ला, सरकार, गाँव में किसी के खेतों में नहीं होता, जितना इनके खेतों में होता है। सो बात क्या है ? काका यहाँ हर समय मौजूद रहते हैं। क्या मजाल जो घास का अंकुर भी खेतों में जम जाय। हर बखत खुरपी लिये घूमा करते हैं। रात में इनके मारे कोई जानवर भी नहीं आने पाता। रात भर में चार दफे उठकर चक्कर लगाते हैं।"

"अरे मैकू भइया, तब भी नुकसान हो ही जाता है। परसों सुअर हमारी सकरकन्द खा गये। ऐसा रंज हुआ कि क्या कहें। कहाँ तक पहरा दें। सुअरों के मारे नाक में दम है। हमारे मालिक ब्राह्मन ठहरे, शिकार करते नहीं। नहीं तो बन्दूक हई है, किसी दिन रात में यहाँ बैठ जाँय और दो-एक को लुढ़का दें, बस फिर न आवें। आधा बिसुवा

सकरकन्द खोद के खा गये ।"

"तो सकरकन्द खुदवा लो, अब तो खुदवाने का समय आ गया ।" मैकू गुड़ैत बोला ।

"हाँ ! अब सिंचाई से छुट्टी पाई है; कल परसों खुदाई लगायेंगे ।"

पाठक जी उठकर बोले—"अच्छा अब चलेंगे ठाकुर !"

"अच्छा मालिक ! कभी कभी दर्सन दे जाया करो । दो चार बरस के मेहमान और हैं ।"

"सो काका अभी तुम बहुत जियोगे ।" मैकू बोला ।

"अरे भैया, अब कौन भरोसा । जब तक चलते हैं चलते हैं । चरन छुवों पण्डित जू ।"

"आनन्द रहो ।" कहकर पाठक जी चल दिये ।

कुछ दूर चलकर मैकू पाठक जी से बोला—"बड़ा मेहनती बुड्ढा है । रात-दिन भूत की तरह जुटा रहता है । इसी के बल पर इतनी बड़ी खेती चल रही है ।"

"और बात का बड़ा खरा है । लगान सब से पहले जमा कर देता है ।"

"हाँ सरकार ! यह बात तो है । पराया पैसा कभी नहीं रखता । और आमदनी भी तो है । सैकड़ों रुपये साल की पैदावार होती है ।"

"आमदनी से क्या होता है । गाँव में और भी तो आमदनी वाले हैं पर पराया पैसा देते दम निकलता है । यह तो नियत की बात है । ठाकुर नियत का बड़ा साफ है ।" पाठक जी बोले ।

"हाँ सरकार ! नियत की तो बात ही है ।"

(२)

शिवनाथ सिंह के तीन पुत्र थे । सब से बड़ा वही था जो भोजन लेकर आया था । उसका नाम अर्जुन सिंह था । अर्जुन से छोटा निरंजन

सिंह, जिसकी आयु बाईस बरस के लगभग थी। सब से छोटा शंकर सिंह—इसकी वयस अठारह वर्ष के लगभग थी। शिवनाथ सिंह के बड़े भाई का भी परिवार था जिसका रहन-सहन, खेती-बारी सब पृथक थे। इस परिवार में केवल एक लड़का सुन्दर सिंह, वयस पचीस वर्ष के लगभग, उसकी माता तथा पत्नी थी। सुन्दर सिंह के एक चार वर्ष का पुत्र तथा एक दो साल की कन्या थी। सुन्दर सिह शिवनाथ सिंह तथा उसके परिवार से द्वेष रखता था; क्योंकि शिवनाथ सिंह धन-धान्य से सुखी था। यद्यपि सुन्दर सिंह के पास भी खाने-कमाने के लिए काफ़ी भूमि थी; परन्तु अपनी बुरी आदतों और लापरवाही के कारण उसकी आर्थिक अवस्था सदा शोचनीय रहती थी। शिवनाथ सिंह ने सुन्दर सिंह को ठीक राह पर लाने का बड़ा प्रयत्न किया; पर जब उसे सफलता न मिली तो वह उसकी ओर से उदासीन हो गया।

रात हो चुकी थी। सुन्दर सिंह भोजन इत्यादि से निवृत होकर अपने द्वार पर लगे हुए अलाव (धूनी) के निकट बैठा था। अलाव के चारों ओर गाँव के तीन-चार मनचले युवक भी बैठे थे। एक युवक कह रहा था—"अबकी तो तुम्हारी खेती गड़बड़ा गई, सुन्दर !"

"क्या बतावें ? बखत पर पानी नहीं दिया गया, इससे हल्की पड़ गई। और सच्ची बात यह है कि खेती में हमारा मन नहीं लगता। खेती करने में आदमी आदमी नहीं रहता, जानवर बन जाता है। हमारे काका को ही देख लो। उन्हें आदमी कौन कहेगा। उस दिन मँहगुवा ने रात में उन्हें देखकर समझा कि कोई भूत है।"

"खेती में तो यार हमारा भी चित्त नहीं लगता। पर क्या करें। मज़ा तो शहर में रहने में है। शाम को निकलो तो हर तरफ़ चमन दिखाई पड़ता है। बिजली की रोशनी जगमग जगमग होती है। सिनेमा देखो, बाजार घूमो। उस दिन हम शहर गये थे, सिनेमा भी देखा था,

चित्त प्रसन्न हो गया। कहा भी तो है—'शहर बसन्ते देवानाम !' शहर में देवता रहते हैं।" एक युवक बोला।

"और भी तो कहा है—'गँवई गाँव मनुष्यानाम, पुरई पुरवा भूतानाम।" दूसरा बोला।

"जैसे हमारे काका, वह मर के भूत ही होंगे।" सुन्दर ने कहा।

"अरे दादा रे! तब तो रात को उधर का रास्ता ही बंद हो जायगा। भूत होके वहीं रहेंगे।" तीसरे ने कहा।

सब लोग खूब हँसे। मनुष्य अपनी प्रवृति के अनुसार किसी भी व्यक्ति को हास्यास्पद बना लेता है।

"कहावत तो ठीक है। देहात का जीवन भी कोई जीवन में जीवन है।"

"लेकिन भइया किया क्या जाय। शहर में रहने के लिए पैसा चाहिए।"

"हाँ भइया! सुन्दर से कहते हैं कि शहर में चलकर रहो। वहीं कोई रोजगार करें यहाँ तो नित्य सबेरे वही हल, बैल और खेत। दिन भर खेतों में काम करो। शाम को घर आकर खाओ-पियो और सो रहो। अब इस समय शहर में क्या बहार होगी। यहाँ अभी से उल्लू और गीदड़-बोलने लगे।"

"यार क्या बतावें, हमारी तो बड़ी इच्छा है; पर इस समय पैसे से तंग हैं।"

"दो-चार सौ अपने काका से ले लो—कमा के दे देना।"

"काका एक धेला दिवाल नहीं हैं।" सुन्दर ने कहा।

"काहे नहीं देंगे। अपने खेत उन्हें दे दो तब तो देंगे।"

"हाँ भइया, यह तो उमाशंकर भइया ने ठीक कहा। खेत दे दोगे तो अवश्य दे देंगे।"

"खेतों पर तो दूसरा भी दे देगा। काका न दें तो न दें।"

सुन्दर कुछ क्षण सोचकर बोला—"हाँ भइया, यह तो तुमने ठीक कहा। खेतों पर तो रुपया मिल जायगा।"

"कहो दोस्त कैसी सूझी ! न कहोगे ! अच्छा तो कल से ही कोशिश शुरू करो।"

"शहर में रोजगार क्या करेंगे, यह भी तो सोच लो।"

"अरे भइया, रोजगार की कमी है। मोहन को देख लो। गाँव से चला गया, शहर में जाकर पान की दूकान खोली। धीरे-धीरे दूकान जम गई—अब आजकल दो-तीन रुपये रोज़ की पैदावार है। दूकान लकालक रहती है। बिजली लगी है, बड़े-बड़े शीशे लगे हैं, पूरे ठाठ हैं। छैला बना बैठा रहता है। हम जब कभी शहर जाते हैं तो ऐसे बढ़िया पान खिलाता है कि तबियत तर हो जाती है।"

"और जब यहाँ रहता था तो अंगुल भर धूल देह पर जमी रहती थी।"

"देहात में धूल तो हई है।"

इसी प्रकार ये मनचले देहाती युवक वार्तालाप करते रहे।

दूसरे दिन सुन्दर सिंह शिवनाथ सिंह के पास पहुँचा। "काका चरन छुई" कहकर सुन्दर सिंह खड़ा हो गया। शिवनाथ सिंह स्नेहपूर्वक बोला—"आनन्द रहो, बबुआ ! कहो कैसे ?"

"काका आप से कुछ काम था।"

"कहो बबुआ।"

"काका, देहात में हमारा मन नहीं लगता। हम शहर जाना चाहते हैं।"

"शहर !" शिवनाथ सिंह ने साश्चर्य पूछा।

"हाँ ! शहर में कोई रोजगार करेंगे।"

"काहे बबुआ, यह क्यों ? घर आया नाग न पूजै, बाँबी पूजन जाय। घर का रोजगार छोड़ के शहर में रोजगार क्यों करोगे ?"

"यहाँ कौन रोजगार है काका ? खाली खेती है सो उसमें हमारा मन नहीं लगता।"

"काहे मन नहीं लगता। उत्तम खेती मध्यम बान—उत्तम काम छोड़ के मध्यम काम करोगे ?"

"खेती चाहे उत्तम हो चाहे मध्यम हमारे चित्त पर नहीं चढ़ती।"

"खेती में मेहनत पड़ती है, इसी से ?"

"रोजगार में भी तो मेहनत पड़ती है—रोजगार कुछ बेमेहनत थोड़ा ही हो जाता है।"

"रोजगार में गद्दी तकिया की बैठक मिलती है, खेती में धूल में बैठना पड़ता है।"

"सो बात नहीं है काका ! न हम मेहनत से डरते हैं न धूल में लोटने से। खाली यह बात है कि चित्त नहीं लगता।"

"ख़ैर बबुआ, जो तुम्हारे मन में आवे सो करो। और तुमने सदा ही किया है। हमारी बात तुमने मानी कब है। घर बैठे का रोजगार छोड़ के परदेश में जा के पड़ोगे। तुम्हारी इच्छा।"

"हाँ काका, अब तो ऐसी ही इच्छा है। मोहन भी तो शहर चला गया था। आज उसकी क्या दशा है। पान की दूकान में दो-तीन रुपये की पैदा है—अच्छा खाता है, अच्छा पहनता है।"

काका हँस पड़े। बोले—"अच्छा खाता है, अच्छा पहनता है। हाँ, घी के नाम पर सड़ा घास का घी, दूध के नाम पर पानी—मक्खन, मट्ठा के दर्शन नहीं होते, यही अच्छा खाना है। रही पहनने की बात सो पहन तो तुम यहाँ भी सकते हो। कपड़ा ले आओ, सिला लो।"

"कुछ भी हो पर यहाँ से सुखी ही है। और यहाँ अच्छा पहन के

करें क्या, धूल खिलावें।"

"हाँ यह बात बबुआ ठीक कहते हो। अच्छा पहन कर पतुरियों (वेश्याओं) को दिखाने का डौल तो यहाँ नहीं है।"

"मोहन को जब यहाँ रोजगार नहीं मिला, तभी तो बेचारा गया।"

शिवनाथ सिंह झुंझलाकर बोला—"मोहन की तुम्हारी बराबरी? मोहन के पास जमीन थी कहाँ! इसलिए उसका जाना ठीक ही था। तुम्हारे तो रामजी की दया से इतनी जमीन है कि चार को खिला के खा सकते हो, पर मेहनत करने की जरूरत है। जो चाहो कि घर बैटे जमीन उगल दे सो नहीं हो सकता।"

"ख़ैर काका! जो भी हो अब तो एक दफा शहर जाकर भाग्य आजमावेंगे, फिर देखा जायगा।"

"जाओ बबुआ, यह खेल भी खेल डालो।"

"काका कुछ रुपये की जरूरत थी।"

"तो मैं क्या करूँ बबुआ। मैं रुपया कहाँ से लाऊँ। रुपया-पैसा सब लड़कों के हाथ में है। मैं तो यहाँ जंगल में पड़ा रहता हूँ। मुझे तो सुबह-शाम रोटी खाना है और खेतों में काम करना। मेरे पास न रुपया है न पैसा।"

"चाहे जहाँ पड़े रहो, मालिक तो तुम्हीं हो, हुकम तो तुम्हारा ही चलता है। हमारे खेत ले लो और पाँच सौ रुपये दे दो। जब हम रुपया अदा कर देंगे तो अपने खेत ले लेंगे।"

खेतों का नाम सुनकर शिवनाथ सिंह चौंक पड़ा।

"तो क्या अब जमीन भी गिरवीं रक्खोगे?"

"रखनी ही पड़ेगी, ऐसे रुपया कौन दे देगा?"

"देखो बबुआ! यह लड़कपन छोड़ दो। जो काम तुम कर सकते हो, जिस काम को तुम जानते हो वह काम छोड़ के शहर में रोजगार

करोगे तो धोखा खाओगे ।"

"सो बात नहीं है काका, हम ऐसे धोखा खाने वाले नहीं हैं ।"

काका मुस्कराये ! उन्होंने सोचा—'इस लड़के पर दुर्बुद्धि सवार है । यह मानेगा नहीं ।' कुछ क्षण चुप रह कर वह बोले—"अच्छा बबुआ, जो तुम्हारी समझ में आये सो करो ।"

"तो रुपये की बाबत क्या कहते हो ?"

"रुपया मेरे पास नहीं है बबुआ ।"

"अच्छी बात है, तो हम कहीं दूसरी जगह देखेंगे ।"

(३)

सुन्दर सिंह काका से विदा होकर गाँव के ज़मींदार पाठक जी के पास पहुँचा । पाठक जी ने पूछा—"कैसे आये सुन्दर ?"

"मालिक, एक पाँच सौ रुपये की जरूरत थी, इसलिए आपके पास आये थे ।"

"पाँच सौ रुपये !"

"हाँ सरकार, हम अपनी जमीन गिरवी रख देंगे ।"

"अच्छा, यह बात है ? ठीक ! रुपये करोगे क्या ?"

"सरकार, यहाँ खेती में हमारा मन नहीं लगता, शहर में जाकर कुछ रोजगार करेंगे ।"

"यह कहो ! अच्छा ब्याज क्या दोगे ?"

"जो सरकार की मर्जी हो । हम गरीब आदमी हैं यह समझ के जो आपका हुकुम होगा, देंगे ।"

"ब्याज दो रुपये सैकड़ा पड़ेगा ।"

"दो रुपये ! अरे नहीं मालिक ! हम से एक रुपया ले लो ।"

"एक रुपये में कहीं मिले तो वहाँ से ले लो ।"

"हमारे मालिक, माँ-बाप तो आप ही हैं, हम और कहाँ जाँय ?"

"हमने तो कह दिया। दो रुपये ब्याज पड़ेगा।"

"अच्छा मालिक बीस आना ले लो। हम आपकी रिआया हैं सरकार, हम पर तो दया होनी ही चाहिए।"

"अच्छा तो पौने दो दे देना—बस ?"

"अरे नहीं राजा, इतना नहीं दे पाऊँगा। डेढ़ रुपया ले लो!"

"अच्छा तो कल आना। हम विचार कर लें।"

"बहुत अच्छा। कल इसी समय आऊँगा।"

सुन्दर सिंह के जाने के पश्चात् पाठक जी ने एक आदमी भेजकर शिवनाथ सिंह को बुलवाया। शिवनाथ सिंह के आने पर उससे पाठक जी बोले—"सुन्दर सिंह अपने खेत रेहन रखकर पाँच सौ रुपये माँगता है। हमने सोचा कि तुम से भी पूछ लें। कल को कहो कि पाठक जी ने चुपके चुपके खेत ले लिये।"

"अरे नहीं मालिक—आपको क्या कमी है जो चुपके चुपके ले लें। वह मेरे पास भी गया था, पर मैंने रुपया देने से इन्कार कर दिया।"

"क्यों ?"

"रुपया बर्बाद कर देगा—खेत भी चले जायँगे।"

"चले क्यों जायँगे, तुम्हारे पास तो रहेंगे। वैसे यदि हमको मिल गये या कोई दूसरा ले गया तब तो चले ही जायँगे।"

"आप रुपया मत दें।"

"परन्तु ठाकुर इससे होगा क्या ? कोई दूसरा दे देगा। उसकी जमीन पर कोई भी पाँच सौ दे सकता है। अच्छी जमीन है; उस पर पाँच सौ मिल जाना कोई कठिन बात नहीं है।"

शिवनाथ सिंह विचार में पड़ गया। पाठक जी की बात उसे जँच गई। विचार करके बोला—"आपकी बात ठीक है। रुपये उसे मिल जायँगे।"

"सोच लो ! हमें खेतों की जरूरत नहीं है। लेकिन इस विचार से कि कोई दूसरा खेत न लेने पावे हमें रुपया देना पड़ेगा।"

"तो सरकार हमीं रुपया दे देंगे। लेकिन एक बात है—हम अपने नाम से नहीं देंगे।"

"क्यों ?"

"हम अपने नाम से देंगे तो उसे फिर कोई खटका न रहेगा। वह समझेगा कि काका का रुपया है, काका हम पर नालिस करने थोड़ा ही जायँगे !"

"हाँ यह तो ठीक है।" पाठक जी हँसकर बोले।

"इसलिए हमारा इरादा है कि रुपया हम आपको दे दें, आप अपने नाम से दे दीजिए। और अपने ही नाम से लिखा पढ़ी करा लीजिए।"

"लेकिन हम पर तुम्हें एतबार है ?"

"अरे सरकार, आप भी क्या बातें करते हैं ? आप राजा आदमी हैं। हमारे गरीब के पाँच सौ रुपये के लिए आप बेईमानी नहीं करेंगे।"

"परन्तु आजकल तो किसान जमींदारों का रत्ती भर भी विश्वास नहीं करते।"

"जो न करें सो न करें। और सभी जमींदार एक से थोड़ा ही होते हैं। आप पर हमें पूरा भरोसा है।"

"अच्छी बात है ! तुम बड़े समझदार आदमी हो ठाकुर।"

"सब सरकार के चरनों की दया है। हम तो कुछ पढ़े-लिखे नहीं हैं। आप लोगों के पास बैठ-बैठकर अपना काम चला लेते हैं। अच्छा तो हम आज रुपया भेजवा देंगे।"

"ब्याज तो लिया ही जायगा !"

"लिखा तो लेना ही, लेना न लेना अपनी इच्छा पर है।"

शाम को अर्जुन सिंह पाठक जी को पाँच सौ रुपये दे गया।

दूसरे दिन पाठक जी ने सुन्दर सिंह को रुपये देकर लिखापढ़ी करा ली।

रुपये पाने के चार दिन बाद सुन्दर सिंह गाँव के दो युवकों को साथ लेकर शहर चला गया। अपना परिवार गाँव पर ही छोड़ गया कि शहर में काम ठीक हो जाने पर बुला लिया जायगा।

(४)

सुन्दर सिंह को गाँव से गये तीन मास हो गये। गाँव में शिवनाथ सिंह इत्यादि को यह समाचार मिला कि सुन्दर सिंह ने शहर में परचूनी की दूकान खोली है। जो युवक उसके साथ गये थे—उनमें से एक पन्द्रह दिन के पश्चात् गाँव लौट आया था। एक उसके साथ रह गया था।

समय-समय पर गाँव में सुन्दर की बाबत भिन्न-भिन्न प्रकार के समाचार आते रहते थे। कभी कोई आकर कहता—"दुकान अच्छी चल रही है। दो रुपये रोज़ की पैदा है।" कभी कोई कहता—"अरे वह दो चार महीने में सब फूँक-ताप कर आता है। सुना है, देखा तो नहीं, वह शाम को रंडियों के मुहल्ले में घूमने जाते हैं। दूसरे तीसरे सिनेमा देखते हैं। वहाँ दो चार गुण्डों का साथ हो गया है, मौजें उड़ती हैं।"

सुन्दर को शहर गये छः महीने हो गये थे, परन्तु अभी तक उसका परिवार गाँव में ही था। इसी बीच दैवयोग से पाठक जी बीमार पड़े और एक सप्ताह की बीमारी में ही उनका शरीरान्त हो गया। उनका पुत्र शिवाधार पाठक उनका उत्तराधिकारी हुआ। इसकी वयस २१, २२ वर्ष के लगभग थी। पाठक जी की मृत्यु के पश्चात् अर्जुन सिंह शिवनाथ सिंह से बोला—"अब हमारे रुपयों का क्या होगा। छोटे सरकार रुपये मानेंगे ?"

"अब यह तो उनका दीन-ईमान जाने। बड़े पण्डित रहते तब तो

कोई खटका नहीं था, पर अब कुछ नहीं कह सकता।"

"उस समय हमने मना किया था कि इस झंझट में न पड़ो। जमीन जाय चूल्हे-भाड़ में ।"

"कैसे चूल्हे-भाड़ में जाय ! वाह ! बड़े भइया मरते समय कह गये थे कि—सिवनाथ, मेरे बाल-बच्चे तुम्हारे सिपुरुद हैं। इनकी रच्छा करना। तुम इनका खयाल न करना, मेरा खयाल करना यह सोचना कि तुम्हारे बड़े भाई के बाल-बच्चे हैं !" कहते-कहते शिवनाथ सिंह का गला भर आया, आँखों में आँसू आ गये। आँसू पोंछते हुए वह बोला-"सो हमें उनकी बात का खयाल है। सुन्दर नालायक निकल गया तो निकल जाय। उसके बाल-बच्चे हैं, हमारी भौजाई है—हमें उनका खयाल है। जमीन चली जायगी तो वे क्या भूखों मरेंगे ?"

"तो तुम कहाँ तक जमीन बचाओगे ?"

"जहाँ तक बचाते बनेगी।"

"अच्छी बात है। अभी पहले तो यही देखना है कि छोटे सरकार क्या कहते हैं।"

"तेरहीं हो जाय तो मैं छोटे पण्डित के पास जाऊँगा। देखूँ क्या कहते हैं।"

"हजार हाथ तो वह कबूलेंगे नहीं।"

"न कबूलें। अपने रुपये ही तो लेंगे।"

"हाँ तो तुम यहाँ जंगल में पड़े रात दिन खून पानी करके कमाओ और सुन्दर सिंह उड़ावें—मौज करें। एक हजार की ठोकर लगेगी—पाँच सौ बह गये और पाँच सौ और ब्याज और देना पड़ेगा।"

"देखा जायगा। भगवान की जो मरजी होगी सो होगा। तुम चिन्ता न करो। जब तक हम जिन्दा हैं तब तक तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं है।"

तेरहीं के बाद शिवनाथ सिंह शिवाधार पाठक के पास पहुँचा। बड़े पण्डित जी के सम्बन्ध में कुछ देर वार्तालाप करके शिवनाथ सिंह ने पूछा— "मालिक, सुन्दर सिंह की जमीन का कागज जो आपके पास है उसका हाल तो आपको मालूम ही होगा।"

"कैसा हाल?" शिवाधार ने भृकुटी सिकोड़कर कहा।

"बड़े पण्डित जी आप से कुछ नहीं कह गये?"

"हम से तो कुछ नहीं कहा।"

जब सुन्दर सिंह ने रुपया लिया था तब तो आपको पता मिला ही होगा।"

"हाँ इतना मालूम हुआ था कि सुन्दर सिंह ने पाँच सौ रुपये पर हमारे यहाँ जमीन गिरवीं धरी है।"

शिवनाथ सिंह ने सोचा—'बड़े पण्डित ने उस समय किसी को न बताया होगा कि रुपया हमने दिया है—और उन्होंने ठीक किया। बता देते तो सुन्दर को पता लग जाता। लेकिन क्या मरते समय भी उन्होंने छोटे पण्डित से या अपने घर में मालकिन से नहीं कहा?' यह सोचकर वह बोला—"बड़े मालिक तो—क्या बतावें, सपना-सा हो गया। कौन जानता था कि इतनी जल्दी चले जायँगे। उन्हें भी यह विश्वास न रहा होगा कि अब नहीं रहेंगे।"

"नहीं सो तो वह जान गये थे ठाकुर। एक रोज पहले जब मैं दवा देने लगा तो बोले—अब दवा का काम नहीं है—अब हम बचेंगे नहीं।"

शिवनाथ सिंह ने सोचा—'तब तो उन्होंने जरूर कहा होगा। जब उन्हें अपने बचने का विश्वास नहीं रहा था तब उन्होंने अपना सब लेना-देना बताया होगा, उसके साथ हमारा भी बताया होगा। बड़े पण्डित ऐसे नहीं थे जो मरते समय ऐसी बेईमामी करते। जान पड़ता है छोटे पण्डित की नियत बिगड़ गई।' फिर शिवनाथ सिंह ने कुछ नहीं कहा।

थोड़ी देर बैठकर चल दिया। बाहर आने पर मैकू गुड़ैत से भेंट हुई। शिवनाथ सिंह बोला—"क्या बतावें मैकू! हम मरते समय बड़े पण्डित के दर्शन नहीं कर सके। इसका बड़ा रंज है।"

मैकू बोला—"बड़े पण्डित ने तो मरने के एक दिन पहले तुम्हें याद किया था। छोटे सरकार से कहा था कि शिवनाथ सिंह को बुलाओ, पर छोटे सरकार ने कुछ ध्यान नहीं दिया। एक दफा फिर उन्होंने कहा—"शिवनाथ सिंह को बुलवाया?' छोटे सरकार बोले—'बुलवा लेंगे।' यह हमारे सामने की बात है।"

शिवनाथ सिंह को विश्वास हो गया कि—बड़े पण्डित ने इसीलिए बुलवाया था कि हमारे सामने छोटे पण्डित से रुपयों की बाबत कह दें। पर छोटे पण्डित टाल गये। उनकी नियत उसी समय से खराब हो गई थी।

शिवनाथ सिंह बोला—हमारा भाग—दर्शन नहीं बदे थे। उन्होंने याद किया था। भगवान उन्हें सरग (स्वर्ग) दे—बड़े अच्छे आदमी थे।"

मैकू बोला—"सो तो हजार दफा कहो। ऐसा आदमी होना मुश्किल है, काका। अब देखो इनसे कैसी पटती है। उनके राज में तो हमने बड़ा सुख उठाया।"

"वह बात कहाँ मैकू-भइया!"

"ठीक कहते हो काका—यह बात उन्हीं के साथ चली गई।"

शिवनाथ सिंह चला गया।

उधर शिवनाथ के जाने के बाद शिवाधार अपने ही आप मुस्कराकर बोले—"कबुलवाने आया था। अब इन गँवारों जितनी बुद्धि भी हम में नहीं है। हुँह! चला गया चुपचाप, हिम्मत नहीं पड़ी। कुछ बोलता तो वह डाँट बताता कि याद करता!"

शिवनाथ सिंह लौटकर अपनी झोपड़ी में आया। एक चिलम भरी, हुक्का निकाला। हुक्का पीते हुए वह विचार करने लगा। विचार करते

करते अपने ही आप बोल उठा·—नहीं! इसका जिकर किसी से भी करना ठीक नहीं। शिवाधार पण्डित की बदनामी हुई तो बड़े पण्डित की बड़ी बदनामी होगी। लड़के तो उन्हीं के हैं। लोग यही तो कहेंगे कि फलाने का लड़का बेईमान निकला। बड़े पण्डित की बदनामी कभी न होने दूँगा। उनकी आत्मा दुखेगी।'

वह इस विचार में थाही कि गाँव के मुखिया गजाधर त्रिवेदी उसकी ओर आते दिखाई पड़े। शिवनाथ ने झटपट हुक्का रख दिया और उठकर खड़ा हो गया। उनके निकट आने पर उसने पालागन किया। आशीर्वाद देकर त्रिवेदी जी बोले—"कहो ठाकुर मजे में?"

"सब आपके चरणों की दया है। आज बड़ी दया की।"

"हाँ! इधर ही चले आये। तुमसे एक काम भी था।"

"हुकुम!"

"हुकुम, कुछ नहीं। बड़े पण्डित ने मरने के दिन हमसे एक बात कही थी, वही तुम्हें बताने आये हैं। जिस दिन वह मरे हैं उस दिन सबेरे हम उन्हें देखने गये थे। हमारे साथ देवीचरण पाण्डे भी थे। कुछ देर को हम और पाण्डे जी उनके पास अकेले ही रह गये थे और कोई नहीं था। छोटे पण्डित भी नहीं थे—शायद पाँच मिनट का समय मिला था। उसी समय बड़े पण्डित हमसे बोले—सुन्दर को हमने जो रुपया दिया है वह हमने नहीं दिया, शिवनाथ ने दिया है। लिखा-पढ़ी हमारे नाम से है, रुपया उसी ने दिया है। हमने यह बात शिवाधार से भी कह दी है और आप लोगों से भी कहे देते हैं—जिसमें उस गरीब का रुपया न मारा जाय।"

यह सुनकर शिवनाथ पहले तो हक्का-बक्का सा हो गया परन्तु फिर उसके मुख पर करुणा का भाव उदय हुआ। उसके नेत्रों से आँसू फूट निकले। उसके मुख से निकला—"वाह रे पण्डित! भगवान तुम्हारी

आत्मा को सरगवासी करे। मैंने अपना रुपया भर पाया। पण्डित ! तुम सरग में बे खटके चैन करो, मुझे रुपया मिल गया। तुम उऋण हो गये।"

इस प्रकार शिवनाथ को आकाश की ओर मुँह उठाये बकते देखकर त्रिवेदी जी अवाक् हो गये। जब शिवनाथ चुप होकर आँसू पोंछने लगा, तब त्रिवेदी जी ने पूछा—"यह क्या कह रहे थे, ठाकुर ! रुपया तुम्हें मिल गया ?"

"हाँ त्रिवेदी जी ! बड़े पण्डित जब दे गये तब भी न मिलेगा ?"

"कब दे गये ? दे जाते तो हम से क्यों ऐसा कह जाते ?"

"उन्होंने तो अपनी तरफ से दे दिया। बस इतना ही काफी है। छोटे सरकार दें या न दें, मुझे उनसे कोई मतलब नहीं।"

"देंगे कैसे नहीं। न दें तो तुम पंचायत करो। नालिश करो। हम और पाँड़े जी तुम्हारी तरफ से गवाही देंगे। रुपया तुम्हें जरूर मिलेगा।"

"अरे त्रिवेदी जू ! नालिस किस पर करूँ ? छोटे पण्डित पर, बड़े पण्डित के लड़के पर ! यह तो मुझसे नहीं होगा। मुझे तो रुपया मिल गया। मैं नालिस क्यों करूँ।"

"बड़े पागल आदमी हो ! छोटे पण्डित से कहो तो, हम लोग भी कहेंगे।"

"त्रिवेदी जी—आपके चरन छूता हूँ। आप कुछ न कहियेगा। आपको भगवान की कसम है। जब मैं कहूँ तब कहियेगा, अपनी तरफ से कुछ मत कहियेगा नहीं तो मुझे बड़ा रंज होगा !"

"अच्छा भाई न कहेंगे। लेकिन तुम कहना जरूर। न मानें तो हमें बुलवा लेना। अच्छा चलते हैं।"

"पण्डित जू ! इसका जिकर और किसी से भी न करना। तुम्हें भगवान की कसम है।"

"हमें क्या मतलब ?" कहकर त्रिवेदी जी चल दिये।

* * *

रात में एक आम के वृक्ष के नीचे शिवनाथ सिंह गड्ढा खोद रहा था। खोदकर उसने एक हाँडी निकाली। हाँडी में रुपये थे। रुपये गिने—सात सौ निकले। शिवनाथ सिंह ने छः सौ रुपये उसमें से निकालकर शेष सौ रुपये उसी हाँडी में रखकर पुनः गाड़ दिये। ये रुपये उसने लड़कों से छिपाकर अटके-भिटके समय के लिये रख छोड़े थे।

दूसरे दिन शिवनाथ सिंह शिवाधार के पास पहुँचा। एकान्त होने पर उसने कहा—"पण्डित जू। सुन्दर के रुपये ले लीजिए और वह कागज दे दीजिए।"

कुछ क्षण के लिए शिवाधार का चेहरा सफ़ेद पड़ गया; परन्तु शीघ्र ही हुलिया सुधारकर वह बोले—"अच्छी बात है। कागज हम लाते हैं।"

शिवाधार कागज ले आये। शिवनाथ सिंह ने पूछा—"कितना रुपया हुआ?"

शिवाधार ने हिसाब जोड़कर बताया—"पाँच सौ असल के और सात महीने का ब्याज! डेढ़ रुपया सैकड़ा के हिसाब से है। वैसे तो सात महीने चार दिन हुए हैं, पर चार दिन का ब्याज हम छोड़ देंगे।"

"काहे को छोड़ दोगे सरकार, वह भी जोड़ लो।"

"नहीं, अब चार दिन का ब्याज तुमसे क्या लें।" शिवाधार ने आँखें नीची करके कहा।

"नहीं सरकार—"आपके चरणों की दया से मैं चार दिन का ब्याज दे सकता हूँ। हिसाब में क्या मुरव्वत। हिसाब पैसे-पैसे का होना चाहिए। वैसे हम भूखें हों तो आप से चाहे जो माँग ले जायँ, पर हिसाब तो देना ही चाहिए।

पं० शिवाधार, जिन्होंने बी० ए० तक शिक्षा पाई थी यद्यपि पास नहीं कर सके थे, इस समय इस अशिक्षित जंगली, गँवार, रात-दिन बैल

की तरह खेतों में काम करने वाले, फटे पुराने कपड़े पहिने किसान के सामने अपने अस्तित्व को ऐसा अनुभव कर रहे थे, जैसे किसी महात्मा के सामने कोई अज्ञानी पापी अपने को अनुभव करता है। वह क्षीण स्वर से बोले—"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

शिवनाथ ने कुल रुपया चुकाकर कागज वापस ले लिया।

शिवनाथ सिंह के चले जाने पर शिवाधार ने माथे के पसीने के साथ ही अपनी आत्मग्लानि को भी पोंछ डाला और मुस्कराकर अपने ही आप कहा—"जंगली बेवकूफ़ कहीं का!"

उधर शिवनाथ सिंह एक अनुपम शान्ति का अनुभव करता हुआ मुस्कराता चला जा रहा था।

पेरिस की नर्तकी

रात के नौ बज चुके थे। पेरिस के एक विख्यात काबरे में खूब चहल-पहल थी। यह काबरे बड़े-बड़े सम्भ्रान्त लोगों का अड्डा था। बड़े बड़े व्यापारी, रईस, लेखक, कवि, सरकारी अफसर इत्यादि-इत्यादि इस काबरे को अपनी उपस्थिति से सुशोभित तथा गौरवान्वित किया करते थे। इस काबरे के प्रबन्धकर्ता भी अपने अनुग्राहकों को प्रसन्न करने में कोई बात उठा न रखते थे। यहाँ की भोजन-सामग्री तो अत्युत्तम होती ही थी, साथ ही ग्राहकों के मनोरञ्जन के लिए अन्य अच्छे से अच्छे साधन जुटाये जाते थे। विख्यात गायक, यन्त्रवादक, खेल तमाशे दिखाने वाले, नर्तकियाँ तथा अन्य सभी प्रकार के कलाकार इस काबरे में अपना कौशल दिखाने के लिये बुलाये जाते थे।

बिजली के शुभ्र प्रकाश से काबरे जगमगा रहा था। सुन्दर तथा युवती परिचारिकाएँ तथा परिचारक ग्राहकों की सेवा में इधर-उधर दौड़ रहे थे। सामने रङ्गमञ्च पर तीन व्यक्ति अपने प्रहसन से लोगों को हँसा रहे थे। रह-रह कर लोगों के कहकहों तथा करतल ध्वनि से काबरे गूँज उठता था।

विशालकाय हाल के एक कोने में एक अधेड़ व्यक्ति अकेला बैठा था। उसके सामने की मेजपर केवल एक शराब का ग्लास रखा हुआ था, जिसे वह कभी-कभी उठाकर चुस्की लगा लेता था। जिस समय लोग प्रहसन पर अट्टहास करते तथा तालियाँ बजाते थे, उस समय इस व्यक्ति के मुखपर घृणा के भाव उदय होते थे।

इसी समय एक युवक, जिसकी वयस २५-२६ के लगभग होगी, हाल के अन्दर प्रविष्ट हुआ। उसने हाल के किनारे पर खड़े होकर एक बार चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। अधेड़ व्यक्ति पर दृष्टि पड़ते ही वह किञ्चित् मुस्कराया और उसकी ओर चला। अन्य लोगों ने उस युवक को गौर से देखा, कुछ ने उसका अभिवादन भी किया। युवक मुस्करा-मुस्करा कर परिचितों का अभिवादन, प्रत्यभिवादन करता हुआ अधेड़ व्यक्ति के पास पहुँचा। अधेड़ व्यक्ति युवक की ओर केवल ताकता रहा। युवक ने अधेड़ व्यक्ति से कहा—"मोशिये सावेलिये! यहाँ अलग-अलग कैसे बैठे हो?"

सावेलिये ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—"आजकल अलग-अलग रहना ही ठीक है। बैठो!"

युवक सावेलिये के सम्मुख कुर्सी पर बैठ गया। इसी समय एक परिचारिका हाथ में पेन्सिल तथा काग़ज़ लिए हुए आयी और मनमोहक मन्द मुस्कान के साथ बोली—"क्या आज्ञा है, मोशिये?"

"एक ग्लास शाम्पेन!" युवक ने उत्तर दिया।

युवती कागज पर लिखते हुए बोली—"और?"

"बस!"

युवती मुँह बिचकाकर चल दी।

युवक ने मोशिये सावेलिये से कहा—"एण्ड्री का नाच देखने आये होंगे। नाच दस बजे से शुरू होगा। अभी तो नौ बजकर चालीस मिनट हुए हैं।" अन्तिम वाक्य युवक ने अपनी रिस्टवाच देखते हुए कहा।

साबेलिये बोला—"मैं एण्ड्री को देखने आया हूँ, एण्ड्री का नाच देखने नहीं आया।"

"तो तुमने अभी तक उसे देखा भी नहीं।"

"वैसे चलते-फिरते देखा है, निकट से देखने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ।"

"नत्रदाम के ओपेरा हाउस में तो उसका नाच कई दिनों तक होता रहा।"

"मैं आजकल ओपेरा हाउस नहीं जाता।" सावेलिये ने कहा।

"क्यों?"

"क्यों पूछते हो कामिले! जब शत्रु हमारे द्वार के सामने आ रहा हो, उस समय ओपेरा हाउस जाना क्या किसी देश-प्रेमी को प्रिय हो सकता है। मैं देख रहा हूँ कि यहाँ जितने आदमी हैं, वे विलासिता में इतने डूबे हुए हैं कि इन्हें उस तबाही और बर्बादी की ज़रा भी चिन्ता नहीं है, जो हम पर आने वाली है। हम लोगों की विलासप्रियता हमारा सर्वनाश कर देगी।"

युवक हँसकर बोला—"मोशिये सावेलिये! तुम्हारा भय निराधार है। हमारी मेजिनो लाइन को तोड़कर अन्दर आना बिलकुल असम्भव बात है।"

इसी समय एक परिचारक कामिले के सामने शाम्पेन का ग्लास रख गया।

"हाँ, लेकिन हम अपनी विलासप्रियता-जन्य असतर्कता से उसे सम्भव बनाते जा रहे हैं।"

"आप भी क्या बातें करते हैं। जनरल वेगां के रहते हुए ऐसा कभी नहीं हो सकता। जनरल वेगां वह व्यक्ति है, जिसके लिए मार्शल फोश जैसा युद्ध-कला-विशारद अपने अन्त समय में कह गया है कि यदि फ्रान्स पर कभी सङ्कट आवे, तो वेगां को याद करना।"

सावेलिये सिर हिलाता हुआ बोला—"लेकिन ऐसे आमोद-प्रमोद-प्रिय देश की रक्षा एक वेगां तो क्या, हज़ार वेगां भी नहीं कर सकते।

इन लोगों की रक्षा—इन लोगों की, जो कुछ थोड़े-से सैनिक अफसरों पर अपनी रक्षा का भार छोड़कर स्वयं राग-रंग में मस्त हैं, कौन कर सकता है कामिले ? मुझे तो फ्रान्स का भविष्य अन्धकार पूर्ण दिखाई पड़ रहा है।"

कामिले ने शाम्पेन का घूँट पीकर कहा—"तुम आवश्यकता से अधिक निराशावादी हो मोशिये सावेलिये।"

"असतर्क आशावादी होने की अपेक्षा सतर्क निराशावादी होना, मेरी समझ में, कहीं अधिक श्रेयस्कर है।"

कामिले हँसकर बोला—"अच्छा ! अच्छा ! सम्भव है, तुम्हारे विचार ही ठीक हों। लेकिन यह तो बताओ, तुम्हें एएड्री में दिलचस्पी कैसे पैदा हुई ?"

"ऐसे घोर विपत्तिकाल में भी जिसने पेरिस-निवासियों का ध्यान युद्ध की गम्भीरता की ओर से हटा कर अपने रूप-सौन्दर्य तथा नृत्यकला की ओर आकर्षित कर रखा है—उसको देखने की उत्सुकता होना कोई अस्वाभाविक बात तो है नहीं।"

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि एएड्री बड़ी रूपवती है और नृत्यकला में भी बड़ी प्रवीण है।" कामिले ने कहा।

"उसके रूपवती होने का तो मुझे कुछ-कुछ ज्ञान हो चुका है, परन्तु नृत्य देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।"

"आज हो जायगा। दस मिनट और बाकी हैं।"

इसके पश्चात् दोनों मौन होकर दस बजने की प्रतीक्षा करने लगे।

दस बजने में जब दो मिनट बाकी थे, तब रङ्गमंच पर काबरे का डायरेक्टर आकर बोला—"आज हमें अपने अनुग्राहकों के सन्मुख फ्रान्स की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी मदाम्वाज़ेल* एएड्री को पेश करते हुए बड़ा ही हर्ष

*मदाम्वाज़ेल फ्रान्सीसी भाषा में कुमारी को कहते हैं।

तथा गर्व हो रहा है। मदाम्वाज़ेल जैसी रूपवती हैं, वैसी ही नृत्यकला-विशारद भी हैं। मदाम्वाज़ेल ने हमारी प्रार्थना पर केवल एक रात अर्थात् आज हमारे रंगमंच को गौरवान्वित करने की कृपा की है। आशा है, हमारे अनुग्राहक उनके नृत्य का आनन्द लेकर हमारे इस महान् परिश्रम को सफल करेंगे।"

डायरेक्टर का वक्तव्य समाप्त होते ही तालियों की गड़गड़ाहट से काबरे गूँज उठा। आरकेस्ट्रा बजना आरम्भ हुआ। सहसा एण्ड्री हरिणी की भाँति कुलांचें लेती हुई स्टेज पर आयी। एक बार पुनः तालियों की गड़गड़ाहट हुई। एण्ड्री के सुडौल दुग्धवर्ण शरीर का अधिकांश नग्न था। उसने नृत्य करना आरम्भ किया। दर्शकगण मन्त्र मुग्ध की भाँति निश्चल होकर उसका नृत्य देखने लगे।

इसमें सन्देह नहीं कि एण्ड्री अत्यन्त रूपवती थी। उसके नेत्र बड़े-बड़े थे—ललाट प्रशस्त, मुखमण्डल गोल तथा भरा हुआ। शरीर बहुत ही सुडौल था।

एक घण्टे के लगभग एण्ड्री का नृत्य हुआ। इस बीच में उसने तीन प्रकार के नृत्य दिखाये। उसका अन्तिम नृत्य "मयूर-नृत्य" था। इस नृत्य के लिए पोशाक भी मयूर के रंग की ही थी और उसमें एक लम्बी पूँछ भी लगी हुई थी। जिस समय वह अपने दोनों हाथ पीठ पर लाकर और कुछ झुककर रंगमंच के चारो ओर दौड़ती थी, उस समय यही प्रतीत होता था कि मोर दौड़ रहा है।

मयूर-नृत्य समाप्त होते ही इतने जोर की करतल ध्वनि हुई कि मोशिये सावेलिये ने अपने कानों पर हाथ धर लिये। कामिले भी ताली बजा रहा था। सावेलिये को कानों पर हाथ धरे देख कर वह हँस पड़ा और बोला—"तालियाँ बजने से कानों को कष्ट होता है क्या ?"

"हाँ! तोपों की गड़गड़ाहट से जितना कष्ट नहीं होता, उतना इन

तालियों की गड़गड़ाहट से होता है। तोपों की गड़गड़ाहट में जीवन है, वीरत्व है। इन तालियों की गड़गड़ाहट में मुर्दापन है, नपुंसकत्व है। अच्छा ! मैं तो चला।"

इतना कहकर सावेलिये उठकर दबे पैरों काबरे के बाहर हो गया।

(२)

इस घटना के पश्चात् एक बहुत बड़े पूँजीपति के विशाल तथा सुसज्जित भवन में पेरिस के मुख्य-मुख्य पूँजीपतियों की सभा होने वाली थी। इन महाशय का असली नाम तो कुछ और ही था, परन्तु हम इन्हें मोशिये प्लेनशोने के नाम से पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं।

सभा आरम्भ होने में अभी डेढ़ घण्टे की देर थी। मोशिये प्लेनशोने अपने प्राइवेट कमरे में एक सुन्दर मखमली सोफा पर बैठे थे, उनकी बगल में ही एएड्री विराजमान थी। सामने छोटी मेज लगी थी, जिस पर एक शराब की बोतल और दो ग्लास रखे हुए थे। दोनों ग्लासों में थोड़ी-थोड़ी शराब थी। एएड्री की जबान कैंची की तरह चल रही थी। वह कह रही थी—"मुझे युद्ध से कितनी घृणा है। ओफ ! मैं युद्ध का नाम सुनते ही काँप जाती हूँ। युद्ध हमें क्या देता है—लाशों के ढेर, आग की लपटें और भग्नावशेष ! मेरी समझ में नहीं आता कि फ्रान्स, हमारा फ्रान्स, जो कला और सौन्दर्य का इतना बड़ा पुजारी है, इस बर्बतापूर्ण वीभत्स काण्ड में कैसे फँस गया।"

इसी समय दूर से तोपों की गड़गड़ाहट का शब्द सुनाई पड़ा। एएड्री ने 'ओह' कहकर प्लेनशोने के वक्षस्थल पर अपना सुवासित सुचिक्कण केशमण्डित सिर धर दिया। प्लेनशोने ने उसके सिर का चुम्बन लेते हुए सान्त्वनापूर्ण स्वर में कहा—"इतना क्यों डरती हो ! अभी तो युद्ध यहाँ से मीलों दूर है।"

"यह मैं जानती हूँ; परन्तु मुझे इन तोपों की गड़गड़ाहट में मृत्यु का चीत्कार सुनाई पड़ता है। यह तोपों की गड़गड़ाहट नहीं, प्रलय का हुङ्कार है।"

"संगीत के मधुर स्वर सुनने के अभ्यस्त इन सुन्दर कोमल कानों को तोपों का गर्जन निस्सन्देह बड़ा ही कष्टप्रद होगा; परन्तु क्या किया जाय। जहाँ तोपों की आवश्यकता है, वहाँ बाँसुरी काम नहीं दे सकती।"

"एण्ड्री ने प्लेनशोने के वक्ष पर से अपना सिर उठा लिया और उत्तेजना पूर्ण स्वर में बोली—"तोपों की आवश्यकता क्यों है? यह आवश्यकता हमारी अपनी उत्पन्न की हुई है। हमने स्वयं सर्वनाश का, प्रलय का आह्वान किया है। जर्मनी स्वयं हम पर आक्रमण करने नहीं आया—हमने स्वयं उसे निमन्त्रण देकर बुलाया है।"

"परन्तु प्रियतमे, हमें पोलैण्ड की सहायता करनी ही चाहिए थी।"

"वह तो तुमने जैसी की है, उसे संसार जानता है।" एण्ड्री ने व्यंग से हँसते हुए कहा।

प्लेनशोने ने इसका कोई उत्तर न दिया।

एण्ड्री ने पुनः कहा—"पोलेण्ड की सहायता भी न कर सके और अपने लिए यह सर्वनाश खड़ा कर लिया। यह तुम लोगों की राजनीति है।"

"हमने ही क्यों, इंगलैण्ड ने भी तो यही किया और हमें उसका साथ देना पड़ा।"

"इंगलैण्ड की बातों में आकर तुमने जर्मनों को अल्टीमेटम दिया; परन्तु उसका परिणाम क्या हुआ? इंगलैण्ड इस समय तुम्हारा कितना साथ दे रहा है? मैं तो कहती हूँ कि इंगलैण्ड के राजनीतिज्ञ तुम लोगों से कहीं अधिक चतुर हैं, जिन्होंने कि जर्मनों को कमजोर करने के लिए उनसे तुम्हें भिड़वा दिया। हमारे सर्वनाश से जिनका कुछ भला होगा,

उनमें मैं इंगलैण्ड की भी गणना करती हूँ। परन्तु इन बीती बातों पर माथापच्ची करने से क्या लाभ! परन्तु अब भी समय है। अब भी यदि हिटलर से सन्धि करके यह प्रलय नृत्य बन्द कर दिया जाय, तो हमारा यह सङ्कट टल सकता है। अन्यथा—ओफ! उसकी कल्पना करने से ही हृदय काँपने लगता है।"

प्लेनशोने सिर झुकाकर विचार-मग्न हो गया। एण्ड्री ने अपना ग्लास उठाकर खाली कर दिया। प्लेनशोने लगभग पन्द्रह मिनट तक गुमसुम बैठा रहा। इसी समय सोफा के पास दीवार में लगा हुआ 'बजर' (घरेलू टेलीफोन की घण्टी) बोला। प्लेनशोने फोन उठाकर बोला—"हलो!"

"—अच्छा!" फोन रखते हुए प्लेनशोने बोला—"लोग आने लगे हैं, अब मुझे बाहर जाना चाहिए।"

"और मैं?" एण्ड्री ने पूछा।

"तुम यहीं बैठो। तुमसे अभी कुछ बातें करनी हैं।"

"तो फिर मिलूँगी, तुम्हें न जाने कितनी देर लगे।"

"सम्भव है, तुम्हारी भी आवश्यकता पड़े।"

"यदि ऐसी बात है, तो बैठी हूँ।"

प्लेनशोने कमरे के बाहर चला गया।

* * *

सभा का कार्य आरम्भ हुआ। सबसे पहले प्लेनशोने ने भाषण किया। प्लेनशोने ने जर्मनी से फ्रान्स का युद्ध होने के मूल कारणों पर प्रकाश डालते हुए युद्ध की गतिविधि का वर्णन किया। उसके पश्चात् उन्होंने कहा—"सेना और उसके अफसरों पर निर्भर रहना बड़ी भयानक भूल होगी। जिस मेजिनो लाइन को हम लोगों ने इन मार्शलों और जनरलों के कहने से अपने गाढ़े पसीने की कमाई के करोड़ों रुपये खर्च

करके बनवाया था, वह मेजिनो लाइन बिलकुल बेकार प्रमाणित हुई। जर्मनों ने उस लाइन को हँसते-खेलते नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और हमारे ये बेवकूफ़ मार्शल और जनरल देखते के देखते रह गये। इन लोगों की अदूरदर्शिता तथा अयोग्यता का इतना बड़ा प्रमाण रहते हुए भी क्या हम लोग अब इन लोगों पर भरोसा कर सकते हैं। कदापि नहीं। यदि हम लोगों ने इनकी बातों में आकर युद्ध जारी रखा, तो फ्रान्स बर्बाद हो जायगा। हमारा यह सुन्दर नगर पेरिस, जो हमारी शताब्दियों की संस्कृति और कला का केन्द्र तथा स्मारक है—ऐसा स्मारक, जिसका जोड़ आज भूमण्डल पर नहीं मिल सकता—धूल में मिल जायगा। इसलिए हमें हिटलर से सन्धि कर लेनी चाहिए। अभी समय है। इसके पूर्व कि हम पराजित होकर हिटलर के गुलाम बनें, हमें हिटलर से सन्धि करके अपने देश, अपने गौरव तथा अपने राष्ट्र की रक्षा करनी चाहिए।"

इस वक्तव्य के समाप्त होते ही करतल ध्वनि हुई। इसके पश्चात् एक अन्य महाशय अपना शराब का ग्लास जल्दी से खाली करके खड़े हुए और कहने लगे—"हमारे माननीय मित्र ने जो बातें कही हैं, उनको न दुहराकर मैं उन बातों का हृदय से समर्थन करता हूँ। साथ ही मैं एक अन्य खतरे की ओर भी आप लोगों का ध्यान आकर्षित करना उचित समझता हूँ। मान लीजिये, यदि हमने युद्ध जारी रखा और कुछ समय तक जर्मनों को रोकने में भी सफल हुए, तो उसका नतीजा क्या होगा। उसका नतीजा यह होगा कि साम्यवादी दल का बल प्रतिदिन बढ़ता जायगा और यदि हमने युद्ध में विजय भी प्राप्त कर ली, जिसकी कि आशा नहीं के बराबर है, तो विजय का सारा श्रेय साम्यवादी दल को प्राप्त हो जायगा और भविष्य में—अर्थात् विजयी फ्रान्स पर साम्यवादियों का पूरा शासन हो जायगा। उस समय हम लोगों की क्या दशा होगी—इस पर विचार कर लेना चाहिए। हमारे लिए दोनों तरह

खतरा है। यदि पराजित होकर हिटलर के गुलाम बने, तब भी खतरा और यदि विजयी हुए तब भी खतरा; इसलिए हमारा कल्याण हिटलर से सन्धि कर लेने में ही है।"

इसके पश्चात् तीन अन्य व्यक्तियों ने भी भाषण किये, जिनमें उन्होंने सन्धि कर लेने पर ही जोर दिया। इसी समय प्लेनशोने के प्राइवेट सेक्रेटरी ने आकर प्लेनशोने के कान में कुछ कहा। प्लेनशोने का चेहरा उतर गया। वह घबराकर उठ खड़ा हुआ और बोला—"दोस्तो! अभी-अभी खबर आयी है कि इटली ने भी हमारे विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है।"

इतना कहते ही एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। इसके पश्चात् एक महाशय उठकर बोले—"अब हमारे लिए सन्धि कर लेने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।"

इसपर सब चिल्ला उठे—"सन्धि! सन्धि! सन्धि! फ्रान्स चिरजीवी हो!"

(३)

पेरिस खाली हो रहा था। पेरिस से पश्चिमी फ्रान्स की ओर जानेवाली स्पेशल ट्रेनें खचाखच भरी हुई छूट रही थीं। लोगों को साथ में केवल आवश्यक सामान ले जाने की आज्ञा थी। लोग अपने भर-पूरे घरों की गृहस्थी सम्बन्धी वस्तुओं को छोड़कर भाग रहे थे। कोई रोता था, कोई हाय-हाय करता था। ट्रेनों के अतिरिक्त मोटरें भी काफी तादाद में आदमियों को लेकर भाग रही थीं। मोशिये प्लेनशोने ने अपने बाल बच्चों को रवाना कर दिया था। इस समय वह अकेला ही अपने पेरिस के भवन में मौजूद था। एण्ड्री भी उसके साथ थी। यद्यपि उसने एण्ड्री से भी चले जाने के लिए कहा था, परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया।

प्लेनशोने बड़ी बेचैनी के साथ अपनी लाइब्रेरी में टहल रहा था। इसी समय एक नौकर ने आकर चार व्यक्तियों के आने की सूचना दी। प्लेनशोने शीघ्रता पूर्वक ड्राइङ्ग-रूम में पहुँचा। ये चारों व्यक्ति पेरिस के मुख्य पूँजी-पतियों में से थे। प्लेनशोने ने इनके सामने पहुँचते ही पूछा—"क्या समाचार है?"

"रेनो सन्धि करने से इनकार करता है।"

"एँ! इनकार करता है। उसका इतना दिमाग। क्या वह नहीं जानता कि फ्रान्स के असली शासक कौन हैं?"

"नहीं जानता, तभी तो इनकार करता है।"

"तो उसे जल्द मालूम हो जायगा। हमको तुरन्त मार्शल पेतां से मिलना चाहिए।"

"तो आइये, चलें—इस समय एक-एक क्षण कीमती है।"

इसी समय पेरिस के पश्चिमी किनारे के एक साधारण, परन्तु बड़े मकान में मोशिये सावेलिये अपने कुछ साथियों सहित बैठा परामर्श कर रहा था। वह कह रहा था—"फ्रान्स के साथ विश्वास घात किया जा रहा है और विश्वास घात करने वालों में फ्रान्स के ही कुपूत हैं। हिट-लर का पाँचवाँ कालम अपना कार्य सफलता पूर्वक कर रहा है और हम लोग बैठे ताक रहे हैं, कुछ नहीं कर सकते।"

एक दूसरा व्यक्ति बड़ी उत्तेजना पूर्वक बोला—"बड़े-बड़े पूँजीपतियों के सामने हमारा क्षीण स्वर कौन सुनता है। मुझे यह भी समाचार मिला है कि रेनो पर सन्धि करने के लिए बहुत जोर डाला जा रहा है।"

सावेलिये आँखें सिकोड़ कर बोला—"मैं रेनो को भली भाँति जानता हूँ। वह युद्ध में प्राण दे देना कहीं अधिक अच्छा समझेगा। जब तक रेनो के हाथ में शासन की बागडोर है, तब तक सन्धि का कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता।"

एक तीसरा व्यक्ति बोला—"मेरे पास इस बात के काफी प्रमाण हैं कि एएड्री ने कई पूँजी-पतियों को सन्धि करने के लिए उकसाया है।"

सावेलिये सिर हिलाता हुआ बोला—"मुझे उसकी ओर से पहले से ही शङ्का रही है। मेरा तो खयाल है कि वह हिटलर के पाँचवें कालम का एक बहुत ही भयानक व्यक्तित्व है।"

कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा। सहसा एक व्यक्ति आह भरकर बोला—"हाय, हमारा प्यारा फ्रान्स ! आज इसकी सभ्यता, संस्कृति, कला, सौन्दर्य सब जर्मनों के पैरों तले रौंदा जा रहा है और हम लोग बैठे देख रहे हैं, कुछ नहीं कर सकते।"

"इसका कारण यही है कि जिनपर हमने फ्रान्स की रक्षा का भार सौंपा, वे बिलकुल निकम्मे प्रमाणित हुए।"

"जनरल वेगां के बड़े नाम थे; परन्तु वह भी कुछ न कर सके।"

"उँह ! जनरल वेगां ! नाम बड़े दर्शन थोड़े।"

"कुछ भी हो ! हम लड़ेंगे, अन्तिम श्वास तक लड़ेंगे। फ्रान्स को पराजित देखने के पहले हम युद्ध स्थल में अपने प्राण दे देंगे।"

फिर कुछ देर तक सन्नाटा !

पुनः निस्तब्धता भङ्ग हुई। एक व्यक्ति बोला—"मोशिये सावेलिये, क्या होना चाहिए ?"

"जर्मनों को तो हम रोक नहीं सकते। जर्मन तो निश्चय पेरिस में दाखिल हो जाँयगे। पेरिस में आतङ्क छा गया है। लोग भाग रहे हैं, ऐसी दशा में क्या हो सकता है।" सावेलिये ने कहा।

"लेकिन हम तो अपने प्राण दे सकते हैं।"

"इस प्रकार प्राण देने से क्या लाभ ? यह तो आत्म-हत्या होगी। यदि जीवित रहेंगे, तो इस समय न सही, आगे चलकर सम्भव है, हम लोग फ्रान्स को जर्मनों के पञ्जे से छुड़ाने में सहायक हो सकें।"

इसी समय एक व्यक्ति आया। यह हाँफ रहा था, जिससे प्रतीत होता था कि यह व्यक्ति बड़ी तेज चाल से आया है। सावेलिये ने इसे देखते ही पूछा—"क्यों राउल ! क्या समाचार हैं ?"

"समाचार अच्छे नहीं हैं। मुझे अभी अभी पता लगा है कि रेनो पर त्याग-पत्र देने के लिए दबाव डाला जा रहा है।"

सावेलिये चौंक पड़ा। कुछ क्षणों तक भृकुटी चढ़ाये चुपचाप बैठे रहने के पश्चात् वह बोला—"फ्रान्स का दुर्भाग्य चरम सीमा पर पहुँच रहा है।"

एक व्यक्ति उठकर खड़ा हो गया और दुःखपूर्ण स्वर में बोला—यदि रेनो ने त्याग-पत्र दे दिया, तो सर्वनाश हो जायगा। रेनो के त्याग-पत्र देने और जर्मनी की विजय, इन दोनों का एक ही अर्थ होता है। सावेलिये ! हमें बताओ कि हमें क्या करना चाहिए, हमें रास्ता दिखाओ, हमारा नेतृत्व करो।"

सावेलिये अपने गम्भीर स्वर में बोला—"मोशिये जूले ! इस समय तो जो कुछ हो रहा है, उसे चुपचाप देखने के अतिरिक्त और हम कुछ भी नहीं कर सकते। शान्त होकर बैठो और उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करो।"

"हमारी आँखों के सामने हमारा सर्वनाश हुआ जा रहा है और तुम हमें शान्ति का पाठ पढ़ा रहे हो। यदि हम कुछ नहीं कर सकते, तो फ्रान्स के चरणों में अपने प्राणों की भेंट तो चढ़ा सकते हैं।"

"इस समय मरना बहुत ही सरल है मोशिये जूले। लोग अपनी इच्छा के विरुद्ध ही मर रहे हैं। परन्तु हमारे प्राण इतने सस्ते नहीं हैं। हम मरेंगे, तो कुछ करके मरेंगे और इस समय कुछ करके मरना असम्भव है। अतएव शान्त होकर बैठो। हमारे अनुकूल समय आयेगा—निश्चय-पूर्वक आयेगा।"

जूले उदास होकर अपने स्थान पर बैठता हुआ बोला—"ठीक कहते

हो सावेलिये ! इस समय कुछ नहीं किया जा सकता।"

सावेलिये बोला—"परन्तु एक काम हम कर सकते हैं और उसे कार्य के करने में यदि एक-दो प्राणों का बलिदान भी हो जाय, तो सार्थक होगा।"

जूले खड़ा होकर बोला—"बताइये ! उस काम को मैं करूँगा।"

"और मैं भी।" एक अन्य व्यक्ति ने खड़े होकर कहा।

सावेलिये ने कहा—"एण्ड्री को पकड़कर यहाँ लाना।"

"एण्ड्री को ?" जूले ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ ! मेरा विश्वास है कि फ्रान्स के इस पतन में एण्ड्री का बहुत बड़ा हाथ रहा है। उसने प्रभावशाली व्यक्तियों को अपने रूप तथा नृत्य पर मुग्ध करके युद्ध के विरुद्ध उनके कान भरे। अभी गास्पर्ड ने कहा था कि उसके पास इस बात के प्रमाण मौजूद हैं कि एण्ड्री ने पूंजी-पतियों को सन्धि करने के लिए उकसाया है।"

गास्पर्ड बोल उठा—"हाँ, मेरे पास प्रमाण हैं।"

जूले बोल उठा—"यदि ऐसी बात है, तो हम उसे अवश्य गिरफ़्तार करके यहाँ लायेंगे।"

इतना कहकर जूले शीघ्रतापूर्वक चल दिया और उसके साथ ही दूसरा व्यक्ति भी चला गया।

(४)

रेनो-सरकार ने त्याग-पत्र दे दिया था और पेतां-सरकार स्थापित हो गयी थी।

सावेलिये अपने उसी निवासस्थान में अपने कुछ साथियों सहित बैठा हुआ था। इसी समय तीन व्यक्ति अन्दर आये। ये तीनों सैनिक वर्दी में थे। ये लोग घायल थे, इनके शरीर पर अनेक पट्टियाँ बँधी हुई थीं। इनके पास एक-एक पिस्तौल के अतिरिक्त और कोई शस्त्रास्त्र नहीं थे। सावेलिये

इनको इस दशा में देखकर बोला—"क्यों दोस्तों, क्या मामला है ?" उनमें से एक बोला—"मार्शल पेतां की आज्ञा से युद्ध बन्द कर दिया गया—हम लोगों के हथियार ले लिये गये।" सावेलिये विषादपूर्ण मन्द मुस्काने के साथ बोला—"मार्शल पेतां से ऐसी ही आशा थी।"

"जर्मन सैनिक हमारी दशा देखकर हँसते हैं और हमारा मज़ाक उड़ाते हैं। अभी यहाँ आते हुए जर्मनों की एक टुकड़ी से हमारा झगड़ा होते-होते बचा। यदि मेरे ये साथी मुझे न रोकते, तो मैं तो लड़ मरता। ओफ़! ऐसा अपमान कभी नहीं सहा। इससे तो लड़कर मर जाना कहीं अधिक अच्छा था।"

"कोई चिन्ता नहीं! अपमान सहो! और इस भावना से सहो कि अनुकूल अवसर आने पर इस अपमान का पूरा बदला लिया जायगा।" सावेलिये ने अपने गम्भीर स्वर में कहा।

"क्या कभी ऐसा अवसर आयेगा ?"

"यदि फ्रान्स के सुपूत अपने इस अपमान, अपनी इस दुर्दशा को भूल न गये, तो अवश्य आयेगा।"

* * *

रात के दस बज चुके थे। सावेलिये गास्पर्ड तथा अन्य तीन व्यक्तियों सहित बैठा भोजन कर रहा था। सहसा गास्पर्ड बोल उठा—"जूले और एलफ्रेड को गये हुए ३० घण्टे के लगभग हो गये। आख़िर ये लोग हैं कहाँ ? राउल का भी पता नहीं।"

सावेलिये बोला—"जूले बिना काम किये नहीं लौटेगा। एलफ्रेड भी उसी के साथ होगा। राउल का ग़ायब होना अलबत्ता चिन्ताजनक है"

"राउल भी किसी फ़िक्र में ही घूम रहा होगा। वह निरुद्देश्य फिरने वाला आदमी नहीं है।" एक अन्य व्यक्ति बोला।

इसके पश्चात् चारों व्यक्ति चुपचाप भोजन करते रहे। भोजन करने

के पश्चात् एक व्यक्ति ने मेज पर से प्लेट तथा ग्लास हटाये, तत्पश्चात् चारों ने सिगरेट सुलगायी। चारों अपने-अपने विचार में मग्न थे। सहसा द्वार खटखटाने की आवाज आयी। गास्पर्ड ने शीघ्रतापूर्वक उठकर द्वार खोला। आगे-आगे जूले था, उसके पीछे एलफ्रेड कम्बल से ढके हुए एक शरीर को कन्धे पर लादे था, उसके पीछे राउल था। इन्हें देखकर सावेलिये उठ खड़ा हुआ और बोला—"शाबाश!"

एलफ्रेड ने कन्धे पर से उस शरीर को उतार कर भूमि पर खड़ा किया, और कम्बल हटाया। यह एण्ड्री थी! उसके मुँह पर पट्टी बंधी थी और वह कुछ ज्ञान शून्य-सी थी। गास्पर्ड ने उसके मुँह की पट्टी खोली, तत्पश्चात् मुँह में ठुंसा हुआ कपड़ा निकाला। कुछ क्षण पश्चात् एण्ड्री को चेत हुआ। उसने अपने चारों ओर देखकर पूछा—"मैं कहाँ हूँ।"

गास्पर्ड बोला—"तुम इस समय मोशिये सावेलिये के सामने हो।"

सावेलिये ने सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए एण्ड्री से कहा—"सावेलिये मेरा नाम है, मदाम्वाज़ेल।" एण्ड्री भृकुटी सिकोड़ कर स्मरण करने का भाव दिखाती हुई बोली—"सावेलिये! यह नाम तो परिचित-सा मालूम होता है। मैंने यह नाम कभी सुना होगा।"

"अवश्य सुना होगा, मदाम्वाज़ेल! जिन लोगों के मध्य में तुम रहना पसन्द करती हो और रहती हो, उन लोगों में मैं इसी नाम से बदनाम हूँ।"

सहसा एण्ड्री के मुख पर स्मृति-जागरण का भाव उदय हुआ और उसी के साथ भय भी। वह भयभीत होकर दो कदम पीछे हट गयी और बोली—'सावेलिये! प्रसिद्ध साम्यवादी!'

"प्रसिद्ध नहीं, बदनाम—मदाम्वाज़ेल। शब्दों का प्रयोग जरा सोच-समझकर किया करो।"—सावेलिये ने मुस्कराकर कहा।

एण्ड्री कुछ कहना ही चाहती थी कि सावेलिये उसे रोक कर बोला—"जरा ठहरो! गास्पर्ड, तुमने मदाम्वाज़ेल को कहाँ पाया?"

गास्पर्ड बोला—"जब से मैं आप से विदा होकर गया, तब से मैं इसी की खोज में फिरता रहा। एलफ्रेड भी मेरे साथ था और बाद को राउल भी आकर हमारे साथ हो गया। राउल से हमको बड़ी सहायता मिली। आज नौ बजे के लगभग हम लोगों ने इसे अकेली एक ओर जाते देखा। हम लोगों ने इसका पीछा किया। यह इधर-उधर देखती हुई चली जा रही थी—हम भी इसके पीछे लगे थे। चलते-चलते यह एक ऐसे मकान के द्वार पर पहुँची, जिसमें किसी जर्मन अफसर का डेरा है। मकान के द्वार पर जर्मन सैनिकों की एक टुकड़ी पहरा दे रही थी। यह पहरेदारों के पास पहुँची और उनसे इसने कुछ कहा। हम लोग दूर से यह सब देख रहें थे। एक सन्तरी भीतर गया और कुछ क्षण के पश्चात् बाहर आकर इसे अपने साथ अन्दर ले गया। आध घण्टे बाद यह बाहर आयी और जिस ओर से गयी थी, उसी ओर लौटी। हम लोग एक अन्धेरे और सुनसान स्थान पर इसकी प्रतीक्षा करने लगे। जैसे ही यह वहाँ पहुँची, हम लोगों ने इसे दबोच लिया और यहाँ ले आये।"

सावेलिये एण्ड्री से बोला—"क्या मदाम्वाज़ेल, जर्मन अफसर के पास अपनी सेवाओं का पुरस्कार लेने गयी थीं?"

एण्ड्री ने सिर झुका लिया, कोई उत्तर न दिया।

सावेलिये ने गास्पर्ड को आज्ञा दी—"इसकी तलाशी लो!"

एण्ड्री बोल उठी—"मुझे हाथ मत लगाओ! मैं जो कुछ मेरे पास है, दिये देती हूँ।"

यह कहकर एण्ड्री ने अपनी चोली के अन्दर से एक मध्याकार मनीबेग निकालकर मेजपर फेंक दिया। सावेलिये ने उसे उठाकर खोला। उसके अन्दर से लगभग डेढ़ सौ फ्राङ्क के नोट, कुछ चाँदी तथा निकेल के सिक्के और एक काग़ज़ निकला। सावेलिये काग़ज़ खोलते हुए बोला—"अभी मदाम्वाज़ेल ने अपना पुरस्कार वसूल नहीं किया। फिलहाल

तुम्हें रुपयों की कोई आवश्यकता भी नहीं। जबतक प्लेनशोने तथा अन्य धनकुबेर तुम्हारी मुट्ठी में हैं, तब तक रुपयों की क्या आवश्यकता। इसके अतिरिक्त तुम्हारा पुरस्कार तो बर्लिन से आवेगा। ऍं! हूँ! अच्छा तो इस समय मदाम्वाज़ेल वह 'पास' लेने गयी थीं। जिससे कोई जर्मन सैनिक तुम्हें परेशान न करे। मदाम्वाज़ेल को अब इस पास की कोई आवश्यकता न पड़ेगी, इसलिए मैं इसे फाड़े डालता हूँ।"

यह कहकर सावेलिये ने पास फाड़ डाला।

एण्ड्री चुप खड़ी थी; परन्तु उसके मुखपर भय के स्पष्ट चिह्न विद्यमान थे।

सावेलिये गास्पर्ड से बोला—"गास्पर्ड, इस प्रमाण के रहते हुए मेरी समझ में तुम्हें और अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं रह जाती।"

गास्पर्ड बोला—"बेशक!"

सावेलिये ने पूछा—तो ऐसी दशा में मदाम्वाज़ेल के लिए क्या दण्ड होना चाहिए?"

"महादण्ड!" सब ने एक स्वर से कहा।

"तुम लोगों का मतलब क्या है?" एण्ड्री अत्यन्त भयभीत होकर बोली।

"हम लोगों का मतलब यह है कि फ्रान्स के साथ विश्वासघात करने के अपराध में तुम्हें महादण्ड अर्थात् मृत्युदण्ड दिया जाय।"

"परन्तु तुम लोग मुझे दण्ड देनेवाले होते कौन हो?"

"यह बात तो यदि मदाम्वाज़ेल किसी अपने प्रेमी के घर में होते हुए कहतीं, तो सार्थक थी; परन्तु यहाँ—यहाँ तो हमी लोग सब कुछ हैं।"

"जङ्गली! असभ्य! तुम्हें शर्म नहीं आती कि एक सौन्दर्य तथा कला की मूर्ति समझकर फ्रान्स जिसके चरणों पर लोटता है, उससे तुम

ऐसे शब्द कहते हो।" एण्ड्री ने ओंठ फड़काते हुए कहा।

"जो सौन्दर्य तथा कला हमें नपुंसक बनाती है, हमारे शरीर में कायरता का सञ्चार करती है और इससे भी बढ़कर जो हमारे साथ, अपने देश के साथ विश्वासघात करती है, उस सौन्दर्य तथा कला का नष्ट हो जाना ही अच्छा है। हमें इस समय रङ्गमञ्च का सौन्दर्य, रङ्ग-मञ्च की कला की आवश्यकता नहीं हैं। हमें आवश्यकता है—युद्ध क्षेत्र के सौन्दर्य और युद्धक्षेत्र की कला की।"

"युद्धक्षेत्र में भी सौन्दर्य होता है—यह आज मालूम हुआ।" एण्ड्री ने व्यंग्य से मुस्कराकर कहा।

"निस्सन्देह मदाम्वाज़ेल को युद्ध-क्षेत्र का सौन्दर्य देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ होगा। परन्तु यदि मदाम्वाज़ेल किसी सैनिक से पूछें, तो वह मदाम्वाज़ेल को बतायेगा कि भागते हुए शत्रु का पीछा करने वाले योद्धा में कितना सौन्दर्य होता है, घायल रक्तरञ्जित विजयी योद्धा की मस्तानी चाल में कितना सौन्दर्य होता है। मेरा विश्वास है कि उतना सौन्दर्य मदाम्वाज़ेल के बढ़िया से बढ़िया शृङ्गार तथा नृत्य में भी नहीं होता।"

"परन्तु यह सौन्दर्य पैशाचिक है।" एण्ड्री घृणा से बोली।

"दासता में फँसाने वाला सौन्दर्य मानवीय तथा दासता से रक्षा करने वाला सौन्दर्य पैशाचिक! खैर! इस विवाद से कोई लाभ नहीं। मदाम्वाज़ेल को और कुछ कहना है?"

"तुम नरपिशाचों से कहने में लाभ ही क्या। मैं कुछ नहीं कहना चाहती।"

"यदि ऐसी बात है, तो हम कला तथा सौन्दर्य के साथ, वह चाहे जैसा भी हो, इतनी रियायत कर सकते हैं कि हम जहाँ तक सम्भव है, उसे अपने हाथों नष्ट न करेंगे। अतएव इधर देखो—।"

यह कहकर सावेलिये ने मेज की दराज से पिस्तौल निकाला। उस की मेगज़ीन खोलकर उसने उसके सब कारतूस निकाल लिये, केवल एक कारतूस रहने दिया। तत्पश्चात् वह उसे मेज पर एण्ड्री के सामने रख कर बोला—"इसमें केवल एक कारतूस है। इसलिए यदि मदाम्वाज़ेल इसकी सहायता से बच निकलने का ख़्याल रखती हों, तो वह व्यर्थ होगा। मदाम्वाज़ेल को केवल पाँच मिनट का समय दिया जाता है। उसके पश्चात् हमें अफसोस के साथ वह कार्य करना पड़ेगा जिसे हम चाहते हैं कि मदाम्वाज़ेल स्वयं करें।

एण्ड्री ने काँपते हुए हाथ से पिस्तौल उठा लिया। उसके पिस्तौल हाथ में लेते ही गास्पर्ड ने उसके पिस्तौलवाले हाथ की कलाई पकड़ कर कहा—"यहाँ नहीं, मदाम्वाज़ेल उस सामने वाले कमरे में चलें।"

यह कह कर गास्पर्ड एण्ड्री को कमरे की ओर ले चला। एण्ड्री बाँया हाथ अपने वक्षस्थल पर रक्खे लड़खड़ाती हुई उस कमरे की ओर चली। इस कमरे में केवल एक द्वार था। उसके निकट पहुँच कर एण्ड्री ठिठुक गई और गर्दन घुमाकर सावेलिये की ओर देखते हुए उसने कहा—"तुम्हें इसका परिणाम भोगना होगा।"

सावेलिये हँसकर बोला—"परन्तु खेद है कि तुम उसे न देख सकोगी।"

गास्पर्ड ने एण्ड्री को कमरे के भीतर ढकेल कर किवाड़े बंद कर लिये और अपने स्थान पर आ गया।

सब लोग चुपचाप सिर झुकाये खड़े थे। इस प्रकार पाँच मिनिट व्यतीत हो गये। सहसा कमरे के भीतर एक धड़ाका हुआ। सावेलिये सिर उठाकर बोला—"फ्रांस के साथ विश्वासघात करने वालों में से एक के पापों का प्रायश्चित्त हो गया।

यौवन की आँधी

मूर्तिकार अपने कार्यगृह में एक मूर्ति का निर्माण कर रहा था। वह युवक था। वयस थी २५, २६ वर्ष के लगभग, रंग गोरा, नाक नक्श दुरुस्त। कार्य में वह मग्न था कि अचानक नौकर आकर बोला "रायसाहब आए हैं। वे आपसे मिलना चाहते हैं!" मूर्तिकार की भृकुटी चढ़ गई! "उँह" कह कर कुछ क्षण सोचता रहा, तब बोला "अच्छा बुला लो।"

उसने छेनी तथा हथौड़ी को एक ओर रख दिया। तौलिए से हाथ पोंछा और अपने बालों को सवाँरते हुये उस अधबनी मूर्ति को वह देखने लगा। इतने में रायसाहब अन्दर आए।

"आइए" कहकर उसने रायसाहब से हाथ मिलाया। एक ओर एक छोटी सी गोलमेज थी और उसके चारों ओर कुर्सियाँ। उसी ओर संकेत करते हुए वह बोला—"बैठिए।"

रायसाहब कुर्सी की ओर बढ़ते हुए बोले—"आपके कार्य में हर्ज तो नहीं हुआ। मैं इधर से जा रहा था। सोचा आपसे भी भेंट करता चलूँ।

"बड़ी कृपा की। कोई ऐसा विशेष हर्ज तो नहीं हुआ।"

"मुझे बड़ी उत्सुकता थी, आपको काम करते देखने की" कुर्सी पर बैठते हुये रायसाहब बोले।

"अच्छा" मूर्तिकार ने हँस कर कहा।

"हाँ, हमारे लिये तो यह आश्चर्य की ही बात है कि आप किस

प्रकार पत्थर की शिला से ऐसी सुन्दर-सुन्दर सूरतें बना देते हैं।"

"हो सकता है। मुझे भी कभी-कभी आश्चर्य्य होता है कि लोग कैसे रंग तथा ब्रश से ऐसे-ऐसे सुन्दर चित्र बना देते हैं। कलम तथा काग़ज़ से किस प्रकार ऐसी सुन्दर-सुन्दर कविताएँ कहानियाँ तथा उपन्यास रच डालते हैं।

रायसाहब हँस पड़े! हँसते हुए बोले—"अच्छा। इन बातों से आपको भी आश्चर्य होता है। यह अजीब बात सुनाई आपने।"

"अजीब क्यों? यह तो बिल्कुल स्वाभाविक है। जो काम कोई नहीं कर सकता उस पर उसे आश्चर्य होता ही है। लीजिए सिगरेट।" उसने सिगरेट का डिब्बा तथा दियासलाई की डिबिया मेज पर रखते हुए कहा।

रायसाहब सिगरेट सुलगाते हुये बोले—"ठीक बात है जो काम जो करता है वह उसके लिए कुछ नहीं होता। जिस काम को वह कर नहीं सकता वही उसे कठिन जान पड़ता है। उसे आश्चर्य होता है कि कैसे कर डालते हैं लोग इसे।

"यही बात है।"

"अच्छा ज़रा देखूँ, कितनी मूर्ति बना डाली है आपने।" रायसाहब उठे और मूर्ति के निकट जा खड़े हुए। मूर्ति एक स्त्री की बैठी हुई मुद्रा में थी। अभी आकार स्पष्ट हुआ नहीं था। रायसाहब मूर्ति को देखकर बोले—"अभी तो बहुत काम बाक़ी है। चेहरा भी इसका अच्छी तरह नहीं खुला है।"

"जी हाँ? अभी इसमें एक सप्ताह का काम और बाक़ी है।"

"अच्छा ज़रा मेरे सामने भी कुछ कीजिए।"

मूर्तिकार ने छेनी तथा हथौड़ी उठा ली, और मूर्ति की नाक जो अभी स्पष्ट नहीं हुई थी बनाने लगा।

रायसाहब पन्द्रह मिनट तक खड़े देखते रहे। इतनी देर में नाक

बहुत कुछ स्पष्ट हो गई थी। रायसाहब बोले—"बड़ा कठिन काम है। जितना आप चाहते हैं, उतना ही पत्थर कटता है। यदि ज़्यादा कट जाय तो ?"

"तो सब चौपट हो जाय। हमारे इस काम में यही बड़ी कठिनाई है। चित्रकार का चित्र यदि कहीं से बिगड़ जाय तो वह उसे ठीक कर सकता है। लेखक की कोई पंक्ति ठीक न हो तो उसे काट कर वह दूसरी लिख सकता है। परन्तु इस शिला में यदि ज़रा भी अधिक कट गया तो पूरी शिला ही बेकार जाती है और फिर नये सिरे से दूसरी शिला काटनी पड़ती है। यही नहीं संगमरमर, चित्रकार के कपड़े तथा रंग, लेखक की स्याही तथा काग़ज़ दोनों से कहीं अधिक मँहगा पड़ता है।"

"इसमें क्या संदेह है। लेकिन आपका हाथ इतना सधा हुआ है कि अधिक कटता ही नहीं। बड़े अभ्यास की बात है।"

"बिना इतना अभ्यास हुए काम हो ही नहीं सकता।"

"मैं भी अपनी पत्नी की एक मूर्ति बनवाना चाहता हूँ।"

"अच्छी बात है बना दूँगा। पूरी बनवाइएगा या केवल बस्ट ?"

"कैसी अच्छी रहेगी ?"

"अपने-अपने ढंग पर दोनों अच्छी रहेंगी।

"देखिए, उनसे पूँछ लूँगा। जैसी वह चाहेंगी वैसी बना दीजिएगा।"

"हाँ। हाँ।"

"काहे से बनाइएगा।"

"संगमरमर की बना दूँगा। काला पत्थर भी आता है—"

"नहीं, मेरा यह तात्पर्य है कि फ़ोटो से बनाइएगा या—"

"फ़ोटो से बना दूँगा।"

"तो ठीक है। मैंने सुना है कि यूरोप के चित्रकार तथा मूर्तिकार जिसकी मूर्त्ति या चित्र बनाते हैं उसे सामने बिठा कर बनाते हैं।"

"हाँ, वैसे भी बन सकती है और फ़ोटो से भी। बात यह है कि यह हिन्दुस्तान है, यूरोप नहीं। यहाँ कौन अपनी स्त्री को मेरे सामने बैठने के लिए भेजेगा।"

"हाँ, यहाँ तो यही बड़ा कठिन है।" रायसाहब ने हँस कर कहा।

"और जो लोग मर जाते हैं, उनकी मूर्ति भी तो बनानी पड़ती है—उनकी मूर्त्ति भी फ़ोटो से ही बनती है।"

"हाँ और क्या। तो चाहें फ़ोटो से बनवाओ चाहे सामने बैठ कर—दोनों हालतों में मूर्ति अच्छी ही रहती है? ऐसी बात तो नहीं है कि सामने बिठा कर बनाई हुई मूर्त्ति ज़्यादा अच्छी बनती है?"

"सामने बिठा कर बनाने से मूर्त्ति निस्सन्देह कुछ अधिक अच्छी बनती है।"

"हूँ! यह बात अवश्य होगी।"

"परन्तु यहाँ तो अधिकतर फ़ोटो से ही बनानी पड़ती है।"

"कोई ऐसी भी मूर्ति आपने बनाई है जिसमें आपने किसी को सामने बिठाया हो।"

"हाँ दो मूर्तियाँ ऐसी बनाई हैं। एक पुरुष की और एक स्त्री की।"

"अच्छा! स्त्री की भी बनाई है? कौन स्त्री। भारतीय या यूरोपियन?..."

"भारतीय थी।"

"तो यहीं आकर बनवाती थीं?"

"जी हाँ! एक घंटा नित्य आकर बैठती थीं। पढ़ी लिखी योग्य महिला हैं।"

"अकेली आती थीं?"

"जी हाँ! क्यों?"

"कुछ नहीं! बड़ा साहस करती थीं! उनके पति ने उन्हें आज्ञा

दे रक्खी थी ?"

"बिना पति की आज्ञा के आती कैसे ? और इसमें साहस की कोई बात नहीं। हमारे यहाँ आने में कोई भय नहीं है।"

रायसाहब हँस कर बोले—"नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है। मैं जानता हूँ कि आप कलाकार हैं, आपका कोई दूसरा विचार नहीं हो सकता। परन्तु प्रत्येक आदमी तो यह बात नहीं समझता।"

"वह और उसका पति दोनों यह बात समझते थे।"

"अवश्य समझते होंगे, तभी तो उन्हें हिचक नहीं हुई। अच्छा तो आज्ञा दीजिए। घर में परामर्श करके बताऊँगा।"

"बहुत अच्छा !"

(२)

रायसाहब एक धनाढ्य आदमी हैं। ज़मींदारी तथा शहर की जायदाद से उन्हें इतनी आय है कि वह रईसाना ढंग से रह सकें। रायसाहब की उम्र ३०, ३२ के लगभग है। गेहुँवा रंग, नाक-नक्श साधारण और शरीर दुबला-पतला है। रायसाहब का परिवार भी छोटा है। उनके परिवार में उनकी वृद्धा माता, उनकी पत्नी, एक विधवा बड़ी बहिन के अतिरिक्त और कोई नहीं है। अभी तक उनके कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई। उनकी पत्नी की उम्र २४, २५ के लगभग है—देखने में सुन्दरी हैं।

रायसाहब अपने कमरे में उपस्थित थे—बाहर से लौट कर कपड़े उतार रहे थे। उनके सामने ही एक गद्देदार कौच पर उनकी पत्नी बैठी थीं।

रायसाहब 'टाई' खोलते हुए बोले—"आज मैं उस मूर्तिकार के यहाँ गया था।

उनकी पत्नी उत्सुक होकर बोली"—गये थे ? अच्छा फिर ?"

"तुम्हारी मूर्ति की बाबत बात की थी। कैसी बनवाओगी, संगमरमर की या काले पत्थर की ?"

"काले पत्थर की किस काम की, भुतनी जैसी लगूँगी। संगमरमर की ही ठीक रहेगी।" पत्नी ने कहा।

"यही मेरा भी विचार है।" रायसाहब ने टाई तथा कालर खूँटी पर टाँगते हुए कहा।

"कितनी बड़ी बनायेगा ?" पत्नी ने पूछा।

"यह तो बनवाने वाले की सामर्थ्य पर है। उसे क्या—उससे चाहे जितनी बड़ी बनवालो। जितनी बड़ी बनेगी उतने ही दाम अधिक लगेंगे।"

"तो कितनी बड़ी बनवाओगे ?"

"मेरी समझ में दो फ़ीट ऊँची ठीक रहेगी। चाहे बस्ट बनवा लो, चाहे पूरी।"

"बनवाई कितनी लगेगी ?"

"मेरे ख़्याल से चार-पाँच सौ में बन जायगी।"

"तो बनवा लो।"

"हाँ, एक बात और है। दो तरह से मूर्ति बनती है। एक तो यह कि तुम स्वयं जाकर उसके सामने बैठो। इस तरह मूर्ति अधिक अच्छी बनेगी। क्योंकि जिस 'पोज़' में वह तुम्हें बिठाना चाहेगा बिठा लेगा। दूसरा तरीक़ा यह है कि उसे फ़ोटो दे दिया जाय। परन्तु उस दशा में जैसी फोटो होगी वैसी ही वह बना देगा।"

"उसके यहाँ कितनी देर बैठना पड़ेगा ?"

"कम से कम एक घंटा रोज़ तो बैठना ही पड़ेगा।"

"तुम्हारी क्या सलाह है ?"

"जैसा तुम चाहो। मुझे दोनों पर विश्वास है—तुम पर भी और उस मूर्तिकार पर भी।" रायसाहब ने किञ्चित मुसकराते हुए पत्नी के बग़ल में बैठकर कहा।"

"जैसा तुम चाहो।"

"तुम्हें तो वहाँ जाकर बैठने में कुछ हिचक नहीं है।"

"हिचक क्यों नहीं, हिचक तो बहुत बड़ी है। यह ठीक है कि हम लोग पर्दा नहीं करते, परन्तु इतने स्वतंत्र भी नहीं हैं कि किसी पर पुरुष के साथ घंटा-घंटा भर एकान्त में बैठें।"

"क्यों डर लगता है क्या ?" रायसाहब हँसकर बोले।

"डर लगे तो कौन बेजा बात है। परायी नियत का हाल क्या मालूम।"

"यह ठीक है। परन्तु तुम्हें दो बातें सोचनी चाहिये। एक तो यह कि उसकी रोज़ी का मामला है। यदि ये लोग ऐसा करने लगें तो इनकी जीविका बंद हो जाय। दूसरे वह कलाकार है। उस समय वह अपने काम के अतिरिक्त अन्य किसी ओर ध्यान नहीं ले जाता। इसके सिवा तुम अपने साथ नौकर ले जाया करना। जब तक तुम वहाँ रहोगी वह भी वहीं एक कोने में बैठा रहा करेगा। बात यह है कि जब चार-पाँच सौ रुपया खर्च किया जाय तो चीज़ भी अच्छी से अच्छी बननी चाहिए।"

"हाँ यह तो ठीक है।"

"तो फिर वहाँ जाने को तैयार हो ?"

"नौकर साथ रहे तो फिर कोई चिन्ता नहीं। इस तरह मैं भी देख सकूँगी कि वह कैसे बनाता है।"

"हाँ ! हाँ ! तो फिर मेरी राय में कल तुम मेरे साथ चलो। तुम्हारा परिचय भी करा दूँ और मूर्ति आरम्भ करने का दिन भी नियत हो जाय।"

"अच्छी बात है।"

दूसरे दिन रायसाहब अपनी पत्नी को लेकर मूर्तिकार के 'स्टूडियो' में पहुँचे। मूर्तिकार ने बड़े आदर सहित दोनों का स्वागत किया।

रायसाहब बोले—"मूर्ति बनना तय हो गया और आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि यह यहीं आकर मूर्ति बनवाने पर राज़ी हो गई हैं। बात यह है कि मूर्ति अच्छी से अच्छी बनना चाहिए।"

"बड़ी खुशी की बात है। जब यह स्वयं "पोज़" देंगी तब फिर क्या कहना है—आप देखेंगे कि मूर्ति कैसी बनती है।"

"मैंने निश्चय किया है कि दो फ़ीट ऊँची मूर्ति बनाइये। कैसी रहेगी?"

"अच्छी रहेगी। पूरी या बस्ट?"

"पूरी बनाइये—बैठी हुई।"

"बहुत ठीक! बड़ी सुन्दर बनेगी।"

"बनवाई क्या लीजिएगा?"

मूर्तिकार ने हँसकर कहा—यह आप क्या पूछते हैं। जो चाहियेगा दे दीजियेगा। आपसे क्या कहूँ। आपकी मुझ पर बड़ी कृपा रहती है। आप कई काम मुझे दिलवा चुके हैं। आपसे मैं कुछ नहीं कह सकता।"

"दूसरों से आप ऐसी मूर्ति का क्या लेते?"

"यह आप पूछते ही क्यों हैं?"

"भाई कुछ 'आइडिया' तो हो जाय। वैसे यह तो मुझे विश्वास है कि मैं जो भी आपको दे दूँगा आप खुशी से स्वीकार कर लेंगे।"

"आप तो जानते ही हैं। कई काम आपके द्वारा बना चुका हूँ।"

"हाँ-हाँ जानता तो हूँ। अच्छा तो मैं ही कहे देता हूँ। चार सौ रुपये आपकी भेंट करूँगा। ठीक है न?"

"ठीक है। आप जो देंगे ले लूँगा।"

"आपको हानि तो न होगी ?"

हानि किस बात की। संगमरमर के दाम निकालकर और सब अपने हाथ का काम है—इसमें हानि का प्रश्न ही नहीं है। और यह भी बात है कि आप उचित ही दे रहे हैं, कम नहीं है।"

"तो बस अब मैं निश्चिन्त हो गया। भाई किसी की मेहनत की उचित क़ीमत न देने को मैं पाप समझता हूँ।"

"आप बड़े दयालु हैं रायसाहब। आजकल बहुत कम लोग ऐसा ख़याल रखते हैं।"

"चलो यह भी तय हो गया। अच्छा अब तो मेरी समझ में कोई बात रही नहीं।"

रायसाहब की पत्नी बोल उठी—"किस दिन से आरम्भ कीजिएगा ?"

"जब से आपको सुविधा हो।"

"पत्थर है या मँगाना पड़ेगा ?" रायसाहब ने पूछा।

"पत्थर है।"

"तो फिर जब से कहिये और जिस समय कहिये यह आजाया करें।"

"जिस रोज़ से आने लगेंगी उसी रोज़ से काम शुरू कर दिया जायगा। हाँ समय की बाबत विचार कर लीजिए दोपहर को ठीक रहेगा ?"

"रायसाहब ने पत्नी की ओर देखा।"

"पत्नी बोली—तीन बजे आ सकती हूँ। तीन बजे से चार साढ़े-चार तक।"

"बहुत ठीक ! अच्छा समय रहेगा।"

"तो कल से आऊँ ?"

"हाँ ! हाँ !"

"अच्छा यह भी बता दीजिए कि कपड़े कैसे पहनूँ।"

"रंग तो मूर्ति में आता नहीं—केवल आकार आयेगा—उसके लिए आप चाहे जैसी साड़ी पहन आवें। चाहे केवल मामूली श्वेत साड़ी हो।"

"अच्छी बात है।"

रायसाहब बोले—"अच्छा तो अब आज्ञा दीजिए। यह कल से आजाया करेंगी।"

दोनों बिदा हुए! मूर्तिकार दोनों को उनकी कार तक पहुँचाने आया।

रायसाहब कार में बैठते हुए बोले—"एक नौकर भी इनके साथ आया करेगा। वह वहीं एक कोने में बैठा रहा करेगा।"

"हाँ! हाँ! यह तो बड़ा अच्छा रहेगा।"

रायसाहब कार स्वयम् ही ड्राइव करके लाये थे। उन्होंने कार स्टार्ट करके आगे बढ़ाई। मूर्तिकार वापस चला गया। रायसाहब बोले—बड़ी कठिनता से मैंने नौकर वाली बात कह पाई।"

"क्यों?" पत्नी ने पूछा।

"यह ज़रा भद्दी सी बात थी न। वह अपने जी में सोचेगा कि मुझ पर विश्वास नहीं।"

"उँह सोचे तो सोचा करे।"

(३)

रायसाहब की पत्नी पार्वती को मूर्तिकार के यहाँ जाते पाँच दिन हो गये। पाँचवें दिन रायसाहब ने पार्वती से पूछा—"मूर्ति का काम कैसा चल रहा है?"

"बहुत अच्छा! अभी तो चेहरा बन रहा है। परन्तु काम बड़ा कठिन है। मेरी तो बैठे-बैठे कमर दुखने लग जाती है।"

"क्या बराबर घंटा भर एक ही तरह बैठे रहना पड़ता है।"

"नहीं, बीच-बीच में वह आराम से बैठने का समय दे देता है, परन्तु फिर भी कमर दुखने लगती है।"

"हाँ भाई, नाजुक कमर ठहरी, अवश्य दुखने लगती होगी।" रायसाहब ने मुस्कराते हुए कहा।

पार्वती शर्मा कर बोली—"वाह!" और बात टालते हुए उसने कहा—"किसी दिन आकर देखो तो।"

"चेहरा निकल आवे तब आकर देखूँगा।"

"वह कहता है कि चेहरा निकल आने के बाद फिर इतनी देर बैठने की आवश्यकता न रहेगी। अच्छा अब जाऊँ समय हो गया।"

यह कह कर पार्वती देवी उठीं और अपने कमरे में चली गईं। थोड़ी देर बाद खूब सजी-धजी निकलीं। नीली जार्जेट की साड़ी, जिसमें चार अँगुल चौड़ा सफ़ेद गोटा लगा हुआ था और नीला ही जम्पर। रायसाहब बोल उठे—क्यों, आज श्वेत धोती नहीं पहनी?"

"बात यह है, लौटते समय जरा लीला से मिलती आऊँगी। उसके यहाँ श्वेत धोती पहन कर कैसे जाऊँ।"

"तो ठीक है!"

पार्वती कार पर बैठ कर स्टूडियो पहुँची। साथ में नौकर था। दोनों अन्दर पहुँचे। मूर्तिकार पार्वती की मूर्ति पर ही कुछ काम कर रहा था। पार्वती को देख कर बोला—"आइये!"

मूर्ति का पत्थर जहाँ रक्खा था उसके पास ही कुछ दूर पर पार्वती के बैठने का स्थान था। एक छोटे से तख़्त पर लकड़ी की एक चौकी रक्खी थी। पार्वती उसी पर जाकर बैठ गई। उनका नौकर अलग एक कोने में दबक कर बैठ गया। मूर्तिकार बोला—"हाँ, वैसे ही चेहरा घुमा कर बैठिये।"

पार्वती ने वैसा ही प्रयत्न किया। मूर्तिकार बोला—"थोड़ी कसर

है ।" यह कह कर वह पार्वती के पास पहुँचा । उसने एक हाथ उनकी चिबुक में लगाया और दूसरा सिर पर और उनके मुख को ठीक करके कहा—"इस तरह !"

"यह मैं रोज भूल जाती हूँ ।"

"कोई हर्ज नहीं ।" कह कर मूर्तिकार अपने स्थान पर आ गया । उसने छेनी तथा हथौड़ी उठा कर काम करना आरम्भ किया । दो-तीन मिनट काम करने के पश्चात्, वह पार्वती के मुख को दृष्टि भरकर देख लेता था । ऐसा करते-करते एक बार दोनों की आँखें मिल गईं । मूर्त्तिकार स्वयम् मूर्त्तिवत् होकर एक मिनिट तक पार्वती की आँखों को देखता रहा । सहसा पार्वती की पलकें झुक गईं और उसके मुख पर लज्जा का भाव उदय हो आया ।

मूर्त्तिकार चौंक पड़ा । उसने दृष्टि हटा कर मूर्त्ति पर छेनी रक्खी और हथौड़ी से उस पर चोट लगानी चाही । परन्तु उसके दोनों हाथ काँप रहे थे । उसने छेनी और हथौड़ी रख दी और पास ही मेज पर रक्खे हुए सिगरेट के डब्बे से एक सिगरेट निकाल कर जलाई । पार्वती की ओर से मुँह घुमाये हुए ही वह उससे बोला—"आप भी आराम से बैठ जाइये । मैं ज़रा सिगरेट पी लूँ ।"

पार्वती सिर झुका कर बैठ गई । बीच-बीच में वह कनखियों से मूर्त्तिकार की ओर देख रही थी परन्तु वह उसकी ओर पीठ किये चुपचाप खड़ा कुछ सोच रहा था—बीच-बीच में सिगरेट पी लेता था।

दो मिनट पश्चात् उसने सिगरेट फेंक दी और पार्वती की ओर घूम कर बोला—"हूँ, अब बैठ जाइये" पार्वती पुनः पूर्ववत् बैठ गई । मूर्त्तिकार ने एक बार उसकी ओर देख कर शीघ्रता पूर्वक अपनी दृष्टि हटाते हुए कहा—"ठीक है ।"

उसने फिर छेनी उठा कर मूर्त्ति पर रक्खी और धीरे-धीरे दो तीन

चोटें लगाईं। उसके हाथ अब भी पूर्णतया अपनी स्वाभाविक अवस्था में न आये थे। उसने मूर्त्ति पर से छेनी हटा ली। कुछ क्षण पार्वती की ओर देखा, परन्तु तुरन्त ही उसकी ओर से इस प्रकार दृष्टि हटा ली मानो उसकी ओर देखते उसे भय लगता है। उसने मेज पर रक्खे हुए अपने औज़ार के बक्स में कुछ ढूँढ़ना शुरू किया। इसके पश्चात् इधर-उधर देखकर अपने ही आप बोला—"वह महीन छेनी कहाँ चली गई। इस नौकर से मैं तंग आ गया, न जाने कहाँ फेंक देता है।"

इसके पश्चात् कुछ क्षण तक इधर-उधर देखकर उसने अपने नौकर को आवाज़ दी। उसके आने पर बोला—"वह छोटी छेनी कहाँ गई?"

"यहीं तो थी सरकार! कल मैंने सब छेनियाँ समेट कर बक्स में ही रख दी थीं।"

"इसमें तो नहीं मिलती। देखो ढूँढ़ो तो।"

नौकर ने बक्स में से छेनी ढूँढ़ निकाली।

वह बोला—"इसी में थी, मुझे मिली ही नहीं। अच्छा जाओ।"

मूर्त्तिकार ने पुनः कार्य करना आरम्भ किया। अब उसके हाथ काबू में आ गये थे! कुछ देर काम करने के पश्चात् उसने औज़ार रख दिये और बोला—"बस!" पार्वती उठ खड़ी हुई और एक अँगड़ाई लेते हुए बोली—"एक तरह से बैठे रहने में शरीर अकड़ जाता है।" मूर्त्तिकार हँसकर बोला—"हाँ! अवश्य थक जाता होगा। चेहरा बन जाय तो फिर आराम से बैठियेगा।"

"कब तक बन जायगा।"

"बस दो तीन दिन की कसर और है।"

पार्वती विदा हुई।

उसके जाने के पश्चात् मूर्तिकार कुर्सी पर बैठ गया और एक सिगरेट सुलगा कर विचार मग्न हो गया। कुछ क्षण पश्चात् अपने ही आप

बोला—"यह क्या हिमाकत है। तोबा !"

सिगरेट समाप्त हो जाने पर वह उठा और एक अन्य मूर्ति के पास जो अधबनी थी, जाकर खड़ा हो गया। उसे कुछ क्षण देखकर बोला—"अब आज काम नहीं होगा।"

उसने वहाँ से हटकर अपना श्वेत "ओवाराल" (एक प्रकार का चोगा जो काम करते समय पहन लिया जाता है) उतार कर खूँटी पर टाँग दिया और नौकर को बुलाया। उसके आने पर बोला—"स्टूडियो बन्द करो।"

"अब काम नहीं कीजिएगा क्या ?"

"नहीं ! आज कुछ तबीयत ठीक नहीं है, घूमने जाऊँगा" यह कह कर वह स्टूडियो के बाहर हो गया।

(४)

अब पार्वती प्रायः नित्य ही अच्छी-अच्छी साड़ियाँ पहन कर आने लगी। रायसाहब ने पूछा—"अब श्वेत धोती पहन कर नहीं जाती क्या ?"

"बात यह है कि लौटते समय घूमती-घामती आती हूँ इसलिए नहीं पहनतीं। उस दिन वकील साहब की पत्नी मिल गईं। उन्होंने सफ़ेद धोती पहने देखकर कहा—'यह सफ़ेद धोती कब से पहनने लगीं।' मुझे बड़ी शरम लगी। मैंने उस समय कह दिया 'जल्दी में जैसे घर में बैठी थी वैसी ही चली आई।' तब से मैं सचेत हो गई।"

रायसाहब हँस कर बोले—"तुम स्त्रियों में इन बातों का बड़ा ख़्याल रहता है कि कौन क्या पहने है। हम मर्दों में यह बात नहीं है। कोई मर्द होता तो सफ़ेद धोती पर कभी कुछ न कहता।"

"औरतें तो झट टोक देती हैं।" पार्वती बोली।

"यही तो बात है। खैर सब ठीक है।"

एक सप्ताह और व्यतीत हो गया। इस बीच में मूर्ति का मुख-मंडल पूर्णतया बन गया था और रायसाहब उसे देख भी आये थे। एक दिन, जब कि पार्वती स्टूडियो गई हुई थीं—रायसाहब किसी आवश्यक कार्यवश बाहर गये, यहाँ से लौटते हुए उनका ताँगा स्टूडियो के पास से निकला।

रायसाहब कोचवान से बोले—"ज़रा रोक देना।"

कोचवान ने ताँगा रोक दिया। रायसाहब ताँगे से उतर कर बोले—"तुम ताँगा घर ले जाओ, मैं उन्हें साथ लेकर कार पर ही आ जाऊँगा।" कोचवान बहुत अच्छा कहता हुआ चल दिया। रायसाहब छड़ी हिलाते हुए स्टूडियो के द्वार पर पहुँचे। द्वार पर उनका नौकर जो पार्वती के साथ आता था, बैठा हुआ था। रायसाहब उससे बोले—"तू यहाँ बाहर कैसा बैठा हुआ है?"

नौकर ने उत्तर दिया—"आज बाबू का नौकर नहीं आया था। सो उन्होंने कहा कि बाहर बैठो जाके किसी को अन्दर न आने देना, पहले हम से पूछ जाना।"

रायसाहब "हूँ" कहकर अन्दर प्रविष्ट हुए। मुख्य द्वार के पश्चात् लम्बी दहलीज़, इसके पश्चात् एक और द्वार पड़ता था। इस द्वार पर नीला पर्दा पड़ा हुआ था। रायसाहब ने एकदम पर्दा हटाया तो......

उन्होंने देखा कि मूर्तिकार कोच पर बैठा हुआ है और पार्वती उसकी गोद में सिर धरे लेटी हैं। रायसाहब को देखते ही मूर्तिकार उठकर खड़ा हो गया। पार्वती घबरा कर उठ बैठी। दोनों का चेहरा श्वेत पड़ गया था।

रायसाहब कुछ क्षण तक मूर्तिवत खड़े रहे। तत्पश्चात् विषादपूर्ण मुस्कान के साथ बोले—"कहिये कलाकार महाशय, यह क्या हो रहा था?"

मूर्तिकार सिर झुकाये अपराधी की भाँति खड़ा था, उसने कोई उत्तर न दिया। पार्वती कोच पर बैठी हुई हिंचकियाँ लेकर रो रही थीं।

"क्यों कलाकार महाशय, उत्तर नहीं देते।" रायसाहब ने गम्भीर होकर कर्कश स्वर में कहा।

"रायसाहब, मुझे कलाकार मत कहिये। मैं अब कलाकार कहलाने के योग्य नहीं रहा।"

"यह कहिये अब आप कलाकार नहीं रहे। तो इस समय आप क्या हैं—आर्शिकेज़ार ?"

"मैं आपका अपराधी हूँ रायसाहब, और आप जो दण्ड दें उसे सहन करने को तैयार हूँ।"

"बदमाश ! कमीने ! मैं नहीं जानता था कि तू इतना नीच और विश्वासघातक है।"

"मैं नहीं था, रायसाहब ! मैं नीच नहीं था और न विश्वासघातक ! मैंने इसके पूर्व कभी कोई ऐसा कार्य नहीं किया। मैं अपनी कला से प्रेम करता था। स्त्री जाति के प्रति मेरा कोई अनुराग ही नहीं था। इसलिए मैंने अपना विवाह नहीं किया। परन्तु आपकी पत्नी ने न जाने मुझ पर क्या जादू कर दिया। विश्वास कीजिए रायसाहब मैं अपने हृदय से बहुत लड़ा। कई रातें हृदय से युद्ध करने में मैंने बैठे बैठे काटीं। परन्तु, मैं हृदय पर विजय न प्राप्त कर सका—इस पर मेरा बस न चला और इसने मुझे मिट्टी में मिलाकर छोड़ा। मेरा सब कुछ चला गया। मान गया, प्रतिष्ठा गई, विश्वास गया और मेरी कला भी जो अब तक मेरे हृदय की वेदी पर आधीन थी वह भी पार्वती के लिए स्थान खाली करके चली गई। आह ! आज मैं सब कुछ लुटा चुका हूँ। यह कहकर मूर्तिकार एक कुर्सी पर बैठ गया। उसने अपना मुँह दोनों हाथों से ढाँप लिया और सिसक-सिसक कर रोने लगा।

रायसाहब कुछ क्षणतक चुपचाप खड़े रहे। इसके उपरान्त बोले—"और साथ ही साथ तूने मेरा भी सर्वनाश कर दिया।"

"निस्सन्देह! रायसाहब मैं बड़ा पापी हूँ। मैंने अपनी कला का अपमान किया, उसको अपवित्र किया—इतना ही नहीं, उसकी हत्या भी कर डाली। और आपके साथ विश्वासघात किया। मुझ से बढ़ कर दण्डनीय और कौन होगा रायसाहब! आप मुझे दण्ड दीजिए—कोई बहुत बड़ा दण्ड दीजिए—जो मुझे जन्म भर याद रहे, जो मुझे मेरे इस महान् पाप का स्मरण दिलाया करे। मुझे दण्ड दीजिए! मुझे दण्ड दीजिए!"

वह पागल की भाँति बकने लगा।

रायसाहब बोले—"तुझे मैं दण्ड नहीं दूँगा बल्कि..." कहते हुए रायसाहब लपक कर पार्वती की मूर्ति के पास पहुँचे। पास रक्खे हुए एक बड़े हथौड़े को उठाकर उन्होंने मूर्ति पर ज़ोर से प्रहार किया। मूर्ति टुकड़े-टुकड़े होकर नीचे गिर गई।

मूर्तिकार अपना सिर पकड़ कर बैठ गया, मानो हथौड़े का प्रहार उसके सिर पर हुआ हो। बोला—"आह! रायसाहब, यह आपने क्या किया—मेरी वह चीज, जिस पर मैंने अपनी सारी कला लगा दी नष्ट कर दी। ओह! ओह! इसके अतिरिक्त मैं और सब कुछ सहन कर सकता था—आह! यह आपने बड़ा कठोर दण्ड दिया।"

"यदि वह भयानक दण्ड है, तो तुम इसके पात्र थे।"

"निस्सन्देह, निस्सन्देह! मैं अब किसी दया का पात्र नहीं हूँ।"

रायसाहब उसकी बात पर कुछ ध्यान न देकर पार्वती से बोले—"और तुम! तुम अब इसी के साथ रहो। मेरे घर में तुम्हारे लिए स्थान नहीं है।"

इतना कह कर रायसाहब तेज़ी के साथ स्टूडियो के बाहर हो गये।

(५)

जिस नगर में यह घटना घटी उस नगर से बहुत दूर एक नगर में वही कलाकार अब पार्वती सहित रहता है।

दोपहर का समय है। मूर्तिकार एक संगमरमर की मूर्ति बना रहा है। उसके निकट ही पार्वती बड़े ध्यान से उसका कार्य देख रही है। सहसा मूर्तिकार बोल उठा—"अरे।"

"क्या हुआ ?" पार्वती ने पूछा !

मूर्तिकार औज़ार मूर्ति पर पटक कर बोला—"मुझसे अब यह काम नहीं हो सकेगा, पार्वती। मेरी कला अभिशप्त हो चुकी है।"

"हुआ क्या ?" कह कर पार्वती खड़ी हो गई और मूर्ति के पास गई। उसने देखा मूर्ति की नाक कट गई थी। वह बोल उठी—"अरे तुमने तो इसकी नाक ही उड़ा दी।"

"क्या कहूँ। मैंने अपनी समझ में चोट ठीक ही लगाई थी, परन्तु न जाने कैसे पूरी नाक ही उड़ गई।"

"यह चौथी मूर्ति तुमने खराब की है।" पार्वती बोली।

"क्या कहूँ। मैं बड़ी सावधानी रखता हूँ, परन्तु फिर भी कुछ न कुछ खराबी हो ही जाती है।"

पार्वती एक दीर्घनिश्वास छोड़ कर बोली,—"तो फिर छोड़ो इसे ! इससे कोई आशा नहीं है। कोई दूसरा धंधा देखो।"

मूर्तिकार सिर पर दोनों हाथ रखकर बैठ गया। कुछ देर तक मौन रहने के पश्चात् बोला—"तुम नहीं जानतीं पार्वती कि तुम्हारे लिए मैंने कितनी बड़ी क़ीमत अदा की है।"

"खैर अब पश्चात्ताप करने से कोई लाभ नहीं। हम दोनों ने ही कुछ न कुछ खोया है। अतएव अब हमें उस प्रेम को भी न खो बैठना चाहिए, जो इस दुरवस्था में भी हमारा साथी बना हुआ है।"

"प्रेम ! प्रेम ! पता नहीं यह क्या था, प्रेम या यौवन का झंझा-वात—जो अपने साथ मेरा सर्वस्व उड़ा ले गया और मुझे तोड़-मरोड़ कर बेकार कर गया।"

"फिर वही पागलपन की बातें। उठो—कल वह क्लर्की की पोस्ट जाकर लेलो। रोटियों का भी तो कुछ सहारा होना चाहिए।"

इतना कहते हुए पार्वती ने मूर्तिकार के गले में बाँह डालकर उसे उठाया। मूर्तिकार पार्वती की ओर देखकर मुस्कराते हुए बोला—"पार्वती इस अवस्था में तुम ही मेरा सर्वस्व हो। तुम न होतीं तो भग-वान जाने मेरी क्या दशा होती। हाँ, कल वह नौकरी स्वीकार कर लूँगा।"

———

मोह

"अरे कोई मज़दूर है ?"

इतना सुनते ही चार-पाँच मज़दूर एकदम दौड़ पड़े। एक मज़दूर जो यद्यपि शरीर से हट्टा-कट्टा था, परन्तु प्रौढ़ावस्था पार करके बुढ़ापे की राज्य-सीमा में पहुँच चुका था और अन्य युवा तथा प्रौढ़ मज़दूरों की भाँति उसके शरीर में फुर्ती तथा तेज़ी नहीं थी, आगे बढ़ा, परन्तु अन्य मज़दूरों को पुकारने वाले के पास पहले पहुँच जाते देखकर ठिठक गया और म्लानमुख होकर पुनः अपने स्थान पर जा बैठा और बड़बड़ाने लगा—इन लोगों के मारे अब मजूरी लगना कठिन है। इसी समय अन्य मज़दूर भी लौट आये और अपनी-अपनी झल्ली औंधी रखकर उन्हीं पर बैठ गये। वृद्ध मज़दूर बोला—भैया ! अब यहाँ गुजर होनी कठिन है।

"क्यों ! गुजर होनी कठिन क्यों है ?" एक दूसरे मज़दूर ने पूछा।

"यहाँ कोई कायदा नहीं, कोई कानून नहीं, इक्केवालों को देखो, तांगेवालों को देखो—सबकी पारी बँधी हुई है। जिसकी पारी होती वही जाता है। रेल पर कुलियों को देखो—बस पहले से ही प्लेटफ़ार्म पर बैठ जाते हैं। जब रेल आती है तब जिसके सामने जो डिब्बा लग जाता है वह उसी डिब्बे का असबाब उतारता है। इससे यह होता है कि सब को मजूरी मिलती रहती है। पर यहाँ तो अन्धेर है। अब भला बताओ, तुम लोग तो जवान ठहरे—किसी ने पुकारा झट दौड़ गये। हम ठहरे बुड्ढे आदमी, तुम लोगों के बराबर दौड़ नहीं सकते—इसलिए हम तो

मरे—हमारी मजूरी भला काहे को लगेगी।

"काहे अँगनू काका, अब बुढ़ापे में यह बात सूझी है, जवानी में तो कभी सूझी न होगी।" एक अन्य मज़दूर ने मुस्करा कर कहा।

उसकी इस बात पर सब मज़दूर हँस पड़े। अँगनू काका कुछ लज्जित होकर सिर खुजलाते हुए बोले—हमारी जवानी में भी ऐसा था या नहीं, इसका तो हमें पता नहीं, क्योंकि हम जवानी में खेती किसानी करते थे, मजूरी थोड़ा ही करते थे। मजूरी तो इधर छः-सात बरस से करने लगे हैं।

"छः-सात बरस से! अरे क्यों अन्धेर करते हो काका? दस बरस से तो मैं देख रहा हूँ।"

"दस बरस हुए होंगे। इससे अधिक नहीं हुए। तब इतना अन्धेर नहीं था।" अँगनू काका ने कहा।

"पर कोई कायदा-कानून तो तब भी नहीं था।"

"कायदा-कानून नहीं था, पर इतना अन्धेर नहीं था कि एक को बुलावे और दस दौड़ जायँ।"

"तुम तो कभी दौड़ते न होगे। अभी साल भर पहले तक की तो मुझे याद है—सबसे पहले पहुँच जाते थे। अब आज पौरुष घट गया तब कायदा-कानून सूझा।"

अँगनू काका झल्लाकर बोले—अच्छा भैया खूब दौड़ो। कौन ससुर मना करता है? हमारा भी राम मालिक है।

"यही ठीक है, राम ही पर भरोसा रक्खे बेड़ा पार होगा—कायदा-कानून तो यहाँ न कभी रहा है और न रहेगा।"

एक अन्य मज़दूर बोला—अच्छा अब की अँगनू काका की पारी है। ये बुड्ढे आदमी हैं। इनका ख्याल रखना चाहिए।

इसी समय फिर 'मज़दूर' 'मज़दूर' की आवाज़ आई। सबने कहा—जाओ अँगनू काका।

अँगनू काका बोले—अरे अब तुम्हीं लोग जाओ।

एक ने अँगनू काका का हाथ पकड़कर उठा दिया और कहा—अब जाते हो या नख़रे बघारते हो।

"अभी तो कायदा-कानून बना रहे थे और अब उठते नहीं।"

अँगनू काका के स्वाभिमान को कुछ ठेस लगी। इस प्रकार दया की भीख लेना उन्हें अच्छा न लगा। वे कुछ झेंप कर यह कहते हुए चले—ऐसे तुम लोग कहाँ तक करोगे। एक दिन का काम थोड़ा ही है।

पुकारनेवाले के पास पहुँचे तब वह उनका परिचित निकला। उसने अँगनू को देखते ही कहा—ओहो! तुम कहाँ थे? मैं तो तुम्हारी तलाश में था—जब तुम दिखाई न पड़े तब मैंने आवाज़ लगाई।

अँगनू काका ने संतोष की निःश्वास छोड़ी, सोचा, ये तो हमारे पुराने गाहक हैं। उन लोगों का (मज़दूरों का) कोई एहसान नहीं हुआ। यह सोचने के पश्चात् गाहक से बोले—यहीं तो बैठा था। आप तो हमारे पुराने मालिक हैं। आप हमें भूल जायँ तो बड़े गजब की बात हो।

"अच्छा यह सामान रक्खो।"

अँगनू ने कुछ फल और शाकभाजी अपनी झल्ली में रक्खी और झल्ली सिर पर उठाकर उस व्यक्ति के साथ चला। कुछ दूर तक दोनो मौन चलते रहे।

अकस्मात् अँगनू बोला—अब पौरुख नहीं चलता बाबू।

"हाँ बुड्ढे भी तो हो आये।" उस व्यक्ति ने कहा।

"यह तो कहो, आप जैसे दो-चार हमारे पुराने मालिक हैं, इससे खाने भर को मिल जाता है। नहीं तो बड़ी मुश्किल पड़ जाय।"

"भगवान् सबका मालिक है।"

"अब मजूर भी बहुत बढ़ गये हैं, बाबू। पहले इतने नहीं थे। अब

तो जिसे देखो वही झल्ली लिये फिरता है। पर यदि बीस सेर बोझा लाद दो तो काँख मारें। हमने डेढ़ डेढ़ मन बोझ इसी सिर पर उठाया है। एक दफ़ा एक बाबू आये। उन्होंने सूरन (ज़मींकन्द) लिया। कुल ६ गाँठें थीं, पर बाबू तुमसे क्या कहूँ; एक-एक गांठ दस दस आठ-आठ सेर की थी। जितने मजूर थे, सब हारी बोल गये कि हमसे अकेले नहीं जायगा। तब हमने हिम्मत बाँधी। अकेले ले गये। उनके घर पर जब पहुँचे तब बोले—ऊपर ज़ीना चढ़ के जाना होगा। यह सुनकर पहले तो हमारा जी कचुवाया, लेकिन फिर हिम्मत बाँधी और बजरंगबली का नाम लेकर खटखट जीना चढ़ गये। बाबू की तबीयत खुश हो गई—चार पैसे इनाम दिये। हमारी जवानी देहात में कटी है। घी-दूध खाते-पीते थे, कसरत करते थे और खूब डटकर खेती-किसानी का काम करते थे। जब घरवाली मर गई, लड़के का पीछा हो गया, उधर जमींदार ने बेदखल कर दिया, तब देहात से जी उचट गया, यहाँ चले आये और मजूरी करने लगे। मजूरी करना सहल काम नहीं है बाबू! शहरवाले मजूरी करना क्या जानें? झल्ली ले ली और मजूर बन गये। मजूरी करना दिल्लगी नहीं है। इसी प्रकार अँगनू काका बड़बड़ाते हुए चले जा रहे थे। वह व्यक्ति भी "हूँ" "हूँ" करता जाता था। घर पहुँचकर उस व्यक्ति ने अँगनू को चार पैसे दिये। अँगनू काका दाँत निकाल कर बोले—एक पैसा और दे देते बाबू।

"भई, तीन पैसे की जगह तुम्हें चार दे दिये।"

"बाबू, आप हमारे पुराने मालिक हैं, इससे कहते हैं। आप लोगों की बदौलत बुढ़ापा कट जायगा—नहीं तो आजकल बड़ी मुश्किल पड़ती है।"

बाबू ने एक पैसा और दे दिया। अँगनू काका प्रसन्न हो गये और आशीर्वाद देते हुए चल दिये।

(२)

अड्डे पर लौट कर आये तब मज़दूरों ने पूछा—क्या मिला अँगनू काका ?

अँगनू काका बोले—वे हमारे पुराने गाहक थे। तुम लोगों का कुछ एहसान नहीं रहा।

इस पर एक हँसकर बोला—सुना भैया, मजूरी दिलवाई तब ये बातें होने लगीं।

"दिलवाई ! इन्होंने दिलवाई ! बड़े दिलवानेवाले ! वे मुझे छोड़ और किसी को ले ही न जाते।"

"तुम न होते तो अपने सिर पर लादकर ले जाते—क्यों न ?"

अँगनू काका कुछ अप्रसन्न होकर बोले जरा बात समझ लिया करो। फिर बोला करो। मेरा मतलब यह है कि यदि वे मुझे देख पाते तो फिर दूसरा मजूर न लेते। तुम लोग जैसे दौड़कर पहुँच जाते हो और छीना-झपटी करते हो, वह बात उनके साथ न चलती। समझे ?

"अब चाहे जो समझाओ अँगनू काका। अब तो मजूरी मिल गई न ?"

"अच्छा भैया तुम्हारी दया से मिली—बस ! पर अब हम दया की भीख नहीं लेंगे, यह याद रखना। अब यदि किसी ने हमसे कहा कि जाओ तो फौजदारी हो जायगी। इस पर सब कहकहा लगा कर हँसने लगे। एक ने पूछा—अच्छा यह बताओ, मिला क्या।

"मिला है खजाना। तुमने मजूरी दिलवाई थी न, इससे खजाना मिल गया।" अँगनू काका ने आँखें तरेर कर कहा।

दूसरा बोला—इस वक्त इनसे न बोलो। नहीं सचमुच फौजदारी हो जायगी। ये लड़ने पर तुले हुए हैं।

"नहीं ऐसी बात नहीं है। क्यों अँगनू काका ? अँगनू काका लड़ेंगे तो फिर गुजर कैसे होगी ?

अँगनू काका ख़ून का घूँट पीकर बोले—हाँ भैया, ठीक कहते हो। तुमसे लड़ेंगे तो हमारी गुजर कैसे चलेगी। तुम्हीं लोगों की बदौलत हमारी गुजर होती है।

वह व्यक्ति बोला—लेओ, और सुनो ! हमने कहा अपने लिए और ये समझे अपने को !

इसी समय एक मज़दूर मज़दूरी से लौट कर आया। उसने उपर्युक्त वाक्य सुनकर बैठते हुए कहा—अँगनू काका सठिया गये हैं।

इतना सुनते ही अँगनू काका ने उसको झल्ली फेंक कर मारी। वह झल्ली का वार बचाकर हँसता हुआ वहाँ से उठकर भागा।

अँगनू काका बोले—अब भागते क्यों हो ? बैठे रहो। हम सठिया गये हैं ? ये सरऊ अभी बारह ही बरस के हैं—चोर कहीं का। बच गया ! यदि कहीं झल्ली पड़ जाती तो छठी का दूध याद आ जाता।

सब मज़दूर हँस रहे थे। अँगनू काका ने उठकर झल्ली उठाई और अपने स्थान पर जा बैठे। इसी समय 'मज़दूर' 'मज़दूर' की आवाज़ आई। जो मज़दूर उठकर भागा था वह आवाज़ सुनकर तुरन्त पहुँच गया, अन्य सब बैठे ही रह गये।

एक बोला— लेओ ! अँगनूकाका ने झल्ली मारी, इसमें भी उस साले का फायदा हो गया।

"अभी एक मजूरी से लौटकर बैठा भी नहीं था कि दूसरी मिल गई।" दूसरे ने कहा।

अँगनू काका अकड़ कर बोले—देखा, ये बड़े-बूढ़ों के लटके हैं। तुम लौंडे इन बातों को क्या जानो ? हमारी खफगी में भी तुम लोगों का फायदा है।

"हाँ अँगनू काका, इस वक्त तो यही बात हुई।" पहले वाले ने कहा।

"यदि ऐसी बात है काका तो हमारे ऊपर भी दया हो जाय—जरा झल्ली खींच कर मारो।" दूसरे ने कहा।

"वह तो वक्त की बात होती है बेटा। ऐसे कुछ नहीं होता।"

(३)

अँगनू काका चार पैसे रोज़ पर एक कोठरी लिये हुए थे। दिन भर में सात-आठ आने पैदा करते थे, उसी में गुज़र करते थे।

गर्मी के दिन थे। अँगनू काका भोजन करके कोठरी के बाहर पत्थर पर एक टाट बिछाये पड़े थे। कभी अपने पिछले जीवन की याद करके ठंडी साँसे भरते थे और कभी भविष्य का ख़याल करके सोचते थे कि जब हाथ-पाँव चलना बन्द हो जायँगे तब कैसे गुज़र होगी। उस समय की याद करके अँगनू काका को रोमाञ्च हो आता था। मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करते कि भगवान्, हाथ पाँव थकने से पहले ही हमें उठा लेना। इसी प्रकार की बातें सोचते-सोचते अँगनू काका को नींद आने लगी। अकस्मात् एक पिल्ला कूँ-कूँ करता हुआ पत्थर पर चढ़ आया। अँगनू काका की निद्रा में बाधा पड़ी, बड़ा बुरा लगा, उसे उठा कर नीचे फेंक दिया और करवट बदलकर बड़बड़ाने लगे—दिन भर तो मजूरी में मरते रहे। अब रात को ये ससुरऊ खून पीने को आ गये। यह कहकर फिर सोने की चेष्टा करने लगे। आँख लगने को ही थी कि वह पिल्ला फिर चढ़ आया और अँगनू के पैरों को चाटने लगा। अँगनू ने लेटे ही लेटे उसे पैर से ठेलकर नीचे गिरा दिया; परन्तु कुछ ही चणों के पश्चात् वह पुनः पत्थर पर चढ़ आया और अँगनू के पैरों के पास दबक कर पड़ रहा। अँगनू काका बोले—चुपचाप पड़े रहो तो पड़े रहे, नहीं तो अब की उठा कर ऐसा पटकूँगा कि मर कर रह जाओगे।

सबेरे अँगनू काका सोकर उठे तब देखते क्या हैं कि उनके पैरों के पास ही पिल्ला पड़ा हुआ है। अँगनू काका उसे देखकर बोले—"है तो अच्छा ? न जाने कहाँ से आ गया है ?" उसी समय एक पड़ोसी उधर से आ निकला। वह बोल उठा—यह पिल्ला कब पाला अँगनू काका !

"अरे भैया मैंने काहे को पाला। यहाँ अपने ही पेट का ठिकाना नहीं। व्याधि कौन पाले ? रात में न जाने कहाँ से आ गया ? साला रात भर छाती का पीपल बन रहा।"

"तुम इसे पाल लो काका !"

"भैया की बातें ! इस ससुरे को पाल कर करें क्या ?"

"तुम्हारी कोठरी ताका करेगा।"

"कोठरी में कौन खजाना गड़ा है जो ताकेगा ?"

वह व्यक्ति हँसता हुआ चला गया।

अँगनू काका शौच इत्यादि से निवृत्त होने गये। लौटकर आये तब उन्हें देखते ही पिल्ला दुम हिलाकर उनकी ओर दौड़ा और पैरों में लिपट गया।

अँगनू काका ने उसे हटाकर कोठरी खोली और रात की रक्खी हुई रोटी खाने बैठे। पिल्ला भी सामने बैठकर मुँह ताकने लगा। अँगनू ने उसके सामने एक टुकड़ा फेंका। पिल्ले ने टुकड़ा सूँघा—सूँघ कर उसे खाने का प्रयत्न किया; परन्तु फिर छोड़ दिया और ओठों पर जीभ फेरते हुए अँगनू का मुँह ताकने लगा।

अँगनू काका बोले—वाह बेटा ! तब तो तुम्हारा निर्वाह होना कठिन है। यहाँ तो यही सूखे टुकड़े हैं। दूध-मलाई खाना हो तो कहीं और जाओ।

अँगनू काका की बात के उत्तर में पिल्ला केवल पूँछ हिलाता रहा और उनकी ओर ललचाई हुई दृष्टि से देखता रहा।

अँगनू खा-पीकर उठे और इच्छा हुई कि कोठरी में ताला लगाकर मजूरी पर जाय। अँगनू के उठते ही पिल्ला पुनः उस के पैरों में लिपट गया। अँगनू उसकी ओर कुछ क्षणों तक ताकता रहा। अकस्मात् उसके नेत्रों में दया की मृदुता उत्पन्न हो आई, सोचा, रात भर का भूखा है इस समय तो इसका पेट भर ही देना चाहिए। यह सोचकर उसे कोठरी में बन्द कर दौड़ा हुआ गया और दो पैसे का दूध ले आया। दूध लाकर उसमें रोटी मली और पिल्ले के सामने धर दी। पिल्ला गपर-गपर खाने लगा। अँगनू मुस्कराकर बोला—अब सरऊ कैसे मजे में खा रहे हैं ? जब वह खा चुका तब अँगनू बोला—अब जाओ। बस अब मेहमानी हो चुकी। यह कहकर उसे कोठरी के बाहर किया और झल्ली उठाकर मज़दूरी के लिए निकले। पिल्ला बाहर आकर पत्थर पर बैठ गया। अँगनू कोठरी में ताला लगाकर पिल्ले की ओर देखते हुए और यह सोचते कि दिन भर में कहीं चला जायगा, चल दिया।

(४)

सन्ध्या-समय जब अँगनू लौटा तब देखा कि पिल्ला पत्थर पर बैठा है। पिल्ला अँगनू को देखते ही दुम हिलाता हुआ पत्थर पर से कूद पड़ा और अँगनू के पैरों में लिपट गया। अँगनू बोला—इस साले ने अच्छा पिण्ड पकड़ा। एक व्यक्ति अँगनू की बात सुनकर बोला—अँगनू काका, आज इसने दिन भर कोठरी पर पहरा दिया है। जो कोई इधर से निकलता था, यह ससुरा "पुक" "पुक" करके भूँकता था। अब यह कहीं जानेवाला नहीं—तुम्हारे ही पास रहेगा।

अँगनू ने कहा—जब खाने को नहीं मिलेगा तब साला अपने आप चला जायगा। इसके लिए चार पैसे रोज कोई कहाँ से लायेगा ?

अँगनू खाने बैठा। सामने पिल्ला भी बैठ गया। अँगनू ने एक

टुकड़ा फेका। पिल्ले ने सूँघ कर छोड़ दिया। अँगनू बोला—हाँ, अब काहे को खाश्रोगे—सबेरे का दूध मुँह लग गया है न! सो इस वक्त मैं दूध लानेवाला नहीं। तुम चाहे जितना लपर-लपर करो। अँगनू खा-पीकर उठा तब कुत्ता दुम हिलाता हुआ पैरों में लिपट गया। अँगनू ने उसकी ओर देखकर सोचा—बैठे-बिठाये यह अच्छी व्याधि पीछे लगी। अँगनू कुछ क्षणों तक उसकी ओर ताकता रहा, कभी उस पर क्रोध आता था, कभी दया आती थी। अन्त को अँगनू का जी न माना, दौड़कर गया और दूध ले लाया। प्रातःकाल जब अँगनू सोकर उठा तब उसने पिल्ले को अपने पास बैठा पाया। उसने सोचा—अब यह कहीं न जायगा, हमारे ही मत्थे रहा। चलो अच्छा है, एक से दो जने तो हुए।

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। अब अँगनू को कुत्ते से स्नेह हो गया। वह अपना दुख-सुख कुत्ते से कहने लगता। कोठरी में बैठा उसको बातें सुनाया करता। जिस रोज़ जो मिलता वह भी उससे कहता। कभी कहता—आज तो गहरे हैं बेटा मोती। कहो क्या खाओगे? कभी कहता—बेटा मोती, आज तो पैसे कम मिले। हम तो रोटी-नमक से खा लेंगे, तुम्हें भी आज दूध कुछ कम मिलेगा। लोग अँगनू को कुत्ते से बातें करते हुए देखकर हँसते थे। कभी कोई पूछ बैठता—क्यों अँगनू काका, तुम जो कहते हो, यह समझ लेता है?

अँगनू काका उत्तर देते—सब समझता है। कुत्ता बड़ा समझदार जानवर होता है।

"परन्तु तुम इसका मतलब क्या समझते होगे?"

"अरे ऐसा मत कहो। हम मुँह से बात करते हैं, यह साला आँखों से बातें करता है। हम इसकी आँखें देखकर बता सकते हैं कि इस वक्त इसकी क्या इच्छा है।

अँगनू मज़दूरी पर जाता तब मज़दूरों से भी मोती की बातें किया करता। एक दिन बोला—भैया, अभी तक हम अकेले थे, पर अब दो जन हो गये। कम से कम दो आने रोज का मोती का खर्च है। यह मजा देखो। जब हाथ-पैर थकने लगे तब खर्च बढ़ गया। वाह रे भगवान्! सोचा था कि अकेले दम हैं जो मिलेगा उसी में गुजर कर लिया करेंगे, जिस दिन न मिलेगा यों ही पड़ रहेंगे। पर अब पहले से भी अधिक चिन्ता हो गई।

एक मज़दूर ने कहा—तुम बहुत अकड़ते भी तो थे। जहाँ कोई बात पड़ती, यही कहते, हमें काहे की चिन्ता! हम तो निर्द्वन्द्व हैं। अब सब निर्द्वन्द्वता निकल रही है।

अँगनू काका ने दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—ठीक कहते हो भैया! सब निकल रही है।

दूसरा बोला—हमने जो उस दिन कहा था कि काका सठिया गये हैं तब कुछ झूठ थोड़ा ही कहा था। पूछो, साले कुत्ते के पीछे प्राण दिये दे रहे हैं। अपना लड़का न रहा, औरत न रही, कोई न रहा, सब जंजाल से छूट गये थे। सो बुढ़ापे में कुत्ते से आशनाई जोड़ बैठे।

"आशनाई शब्द पर सब मज़दूर हँसने लगे।"

अँगनू काका को बड़ा बुरा लगा, बोले—यह साला जब बोलेगा तब ऐसी ही ऊट-पटांग बात कहेगा।

वह हाथ जोड़कर बोला—झूठ नहीं कहता हूँ काका! चाहे जूते मार लो। तुम्हें चाहिये था कि सब जंजाल से चित हटाकर भगवान् का भजन करते सो वह तो कुछ न किया, कुत्ते के हवाले हो गये। रात-दिन उसी साले की माला जपा करते हैं।

अँगनू काका ने कहा—क्या करें भैया, अब हमारी शरण आ गया है तब उसे कहाँ निकाल दें?

"अरे मारो साले के चार डंडे। आप भाग जायगा। कुत्ते का क्या ! उसके बीस ठिकाने हैं। पचासों कुत्ते फिरा करते हैं। उन्हें कौन पाले हुए है ?"

"भैया हम से तो अब यह हो नहीं सकता कि डंडे मार कर निकाल दें।"

"कैसे हो सकता है ? आशनाई है।"

अँगनू काका ने झल्लाकर झल्ली खींचकर मारी। परन्तु वह पहले से ही चौकन्ना बैठा था, वार बचा गया। अँगनू काका लाल-लाल आँखें करके बोले—आशनाई है ! हम कुत्ते से आशनाई करेंगे ! कहीं आदमी और जानवर की भी आशनाई होती है ?"

"होती नहीं तो तुम्हारी कैसे हो गई ?"

"अब चले जाओ ! नहीं, मारे जूतों के खोपड़ी गंजी कर दूँगा।"

"जूतों मार लो काका, पर जो बात सच्ची है वह तो हम जरूर कहेंगे। खुद तो नमक रोटी खाओ और कुत्ते साले को दूध रोटी खिलाओ। यह आशनाई की बात नहीं तो क्या है ?"

"अरे भैया सिवराखन, वह साला सूखी रोटी खाता नहीं।" अँगनू काका ने नम्रतापूर्वक कहा।

"जब दूध रोटी मिलती है तब सूखी क्यों खाय। वह कुछ तुम्हारी तरह सठिया गया है क्या ?" सिवराखन ने कहा।

अँगनू काका खून का घूँट पीकर रह गये। सोचा, ये लोग क्या जानें कि वह क्या है।

एक अन्य व्यक्ति बोला—उसे यहाँ तो लाओ किसी दिन।

अँगनू काका ने कहा—जरा और बड़ा हो जाय तो लाया करेंगे।

"अँगनू काका, उसे कुछ पढ़ाओ लिखाओगे भी या अपनी तरह डलिया ही ढुलवाओगे ?" सिवराखन ने पूछा।

"अच्छा अब दिल्लगी हो चुकी। अब चुप हो जाओ।"

"नहीं काका, इन्तजाम तो तुमने अच्छा सोचा है। बुढ़ापे में तुम मजे से पड़े रहना। वह इधर उधर से रोटी उठा लाया करेगा और तुम्हें खिलाया करेगा।"

अँगनू काका बोले—अच्छा भैया, जो तुम्हारा जी चाहे कहो। अब तो पाल ही लिया है। अब तुम्हारे कहने से हम उसे निकाल नहीं सकते।

एक दिन मज़दूरों के आग्रह पर अँगनू काका जब सबेरे अड्डे पर आये तब मोती को भी साथ लेते आये। एक स्थान पर उसे बाँध दिया। दिन भर मज़दूरी की। उस दिन पैसे कुछ अधिक मिले। बड़े प्रसन्न हुए। सोचा कि आज मोती को दो पैसे की बरफ़ी खिलावेंगे।

सन्ध्या-समय उसे साथ लेकर चले। आगे-आगे अँगनू काका जा रहे, पीछे मोती था। एक चौराहा पार करने लगे। संयोगवश मोती चौराहे के बीचोबीच चला गया। दो ओर से दो मोटर आ रहे थे। अँगनू काका ने देखा कि मोती मोटरों के नीचे दबना ही चाहता है। झपटकर उसे उठाने चले—मोती तो कतरा कर निकल गया, परन्तु अँगनू काका को मोटर की टक्कर लगी, वे तड़ाक से गिरे। झल्ली हाथ से छूटकर दूर जा गिरी, मोटर अँगनू काका के ऊपर से होकर निकल गया।

* * *

एक मज़दूर के साथ एक कुत्ता रहता है। सबेरे उसी के साथ अड्डे पर आता है और शाम को उसी के साथ जाता है। वह मज़दूर जहाँ-जहाँ मज़दूरी पर जाता है, कुत्ता भी साथ रहता है। उससे जो कोई पूछता है कि यह कुत्ता कब पाला तब वह उत्तर देता है—मैंने नहीं पाला, यह अँगनू काका का कुत्ता है। मरते समय मुझको सौंप गये थे। भगवान की लीला देखो! लड़का मर गया, औरत मर गई,

घर-द्वार छूट गया, पर उसकी उन्हें कुछ चिन्ता नहीं थी—मस्त रहते थे। आखिरी समय इसे पाल लिया। तब ऐसा मोह बढ़ा कि इसी ससुरे के पीछे जान दे दी और मरते समय भी इसी की चिन्ता रही। न लड़के को याद किया, न औरत को और न भगवान् का नाम लिया। इसी का नाम रटते रहे। हम से बोले—"भैया सिवराखन! इसे तुम पाल लो, मेरी निशानी तुम्हारे पास रहेगी, पर अच्छी तरह रखना।" मैंने जब कसम खाई कि अच्छी तरह रक्खूँगा तब प्राण छूटे। सो यह उन्हीं अँगनू काका की निशानी है।

आज दिन भी उस कुत्ते को देखकर लोगों को अँगनू काका का स्मरण हो आता है।

पथ-भ्रष्ट

सन्ध्या का समय था। कार्लटन होटल में ग्राहकों-अनुग्राहकों की भीड़-भाड़ थी। इसी समय होटल के सामने एक मोटरकार आकर रुकी। मोटर में से तीन व्यक्ति बाहर आये। वे तीनों युवक थे। तीनों की वयस २२ से २५ बरस तक थी। तीनों सूट-बूट से सुसज्जित थे। मन्द गति से होटल की सीढ़ियों पर चढ़कर वे लोग होटल के मुख्य द्वार पर पहुँचे। होटल के द्वारपाल ने सलाम किया। इनमें से एक ने किञ्चित् सिर हिला कर सलाम का उत्तर दिया।

इनके अन्दर प्रविष्ट होते ही एक वेटर (परिचारक) सामने आया। इनमें से एक ने उससे कहा—"प्राइवेट!"

"तो इधर आइये हुजूर!" कहकर वेटर एक ओर चला। तीनों व्यक्ति उसके पीछे-पीछे चलकर एक छोटे से कमरे में पहुँचे। इस कमरे में एक गोल मेज लगी हुई थी और उसके चारों ओर चार कुर्सियां रखी थीं। कुर्सियों पर बैठ जाने के पश्चात् एक ने कहा—"यह स्थान एकान्त है।"

"मैं सदैव एकान्त स्थान ही पसन्द करता हूँ।" दूसरे ने कहा।

वेटर बोला—"क्या लाऊँ सरकार!"

"वही, जो हमेशा लाते हो—एक बोतल ह्विस्की और सोडा वग़ैरह। ह्वाइट हार्स लाना।"

"और कबाब भी? वेटर ने पूछा।

"ज़रूर—बिना कबाब के मज़ा क्या खाक आयेगा? और 'चिप्स'

भी लाना।"

"बहुत अच्छा।" कहकर वेटर चला गया।

"चिप्स" के साथ तो मछली भी होनी चाहिए। क्यों रामनाथ?"

रामनाथ बोला—"अपनी-अपनी रुचि है। सुरेन्द्र को शायद मछली पसन्द नहीं आती।"

"हाँ, मुझे कुछ ज्यादा पसन्द नहीं।" सुरेन्द्र ने कहा।

"तुम्हें पसन्द हो तो मँगा लो।"

"नहीं जी! मैंने तो वैसे ही कहा। फिश एण्ड चिप्स बहुधा एक साथ कहा जाता है, इसलिए मैंने कहा।"

"हाँ अँगरेजी तरीका तो यही है कि फिश और चिप्स साथ-साथ चलते हैं। लेकिन हम तो भई हिन्दुस्तानी हैं। जो पसन्द आता है, वह खाते हैं।" सुरेन्द्र ने कहा।

"ब्रजमोहन कहीं सुन भागा है।" रामनाथ ने मुस्करा कर सुरेन्द्र से कहा।

"बात तो ठीक कहते हो उस्ताद। हमने सुना और पढ़ा ही है—खाने का अवसर आज ही मिला है।" ब्रजमोहन ने कहा।

"तो तुम्हारे लिए फिश भी मँगाना चाहिए—अच्छा आने दो।"

"अजी नहीं। ऐसी क्या जरूरत है। और जो मेरे जी की बात पूछो, तो मुझे होटल में खाना ही पसन्द नहीं।" ब्रजमोहन ने कहा।

"यह क्यों?" रामनाथ ने पूछा।

"भई, मेरा खयाल यह है कि जिनको घर में अच्छा खाना नहीं मिलता या उनकी मरजी का नहीं मिलता, वे ही होटल झाँकते हैं।"

यह सुनकर सुरेन्द्र हँस पड़ा, परन्तु उसकी हँसी में कुछ लज्जित होने का भाव भी था। यह देखकर रामनाथ ब्रजमोहन से बोला—"इधर कुछ पानी मरा है भई।"

"वह तो जरूर पानी भरेगा, मेरा अनुभव गलत नहीं है। आखिर यह जो नित्य शाम को होटल में ही भोजन करते हैं–इसका कोई कारण भी तो होना चाहिए। कभी-कभी जायका बदलने के लिए होटल चले जाना तो समझ में आ सकता है। परन्तु जब कोई नित्य होटल में ही भोजन करे, तो समझ लेना चाहिए कि घर में आलू का झोल ही मिलता है—और वह भी ऐसा कि यदि उसमें गोता लगाया जाय, तो शायद आलू का कोई टुकड़ा हाथ आ जाय।"

झेंप से उत्पन्न हुई गम्भीरता का सहारा लेते हुए सुरेन्द्र ने कहा–"यह शायद आप अपने घर की हालत बयान कर रहे हैं?"

"क्यों कृतघ्नता करते हो, मेरे घर में तो तुम कई बार भोजन कर चुके हो। परन्तु तुमने आजतक घर पर खाना नहीं खिलाया। जब दावत दी तब होटल ही झँकाया। क्यों भई रामनाथ, तुम्हें इन्होंने कभी घर पर खाना खिलाया?"

"ऊहुँक! जब खिलाया तब होटल ही लाये।" रामनाथ ने उत्तर दिया।

"बस, इसीसे नतीजा निकाल लो।"

इसी समय वेटर एक अन्य वेटर सहित सब सामान लेकर आ गया।

थोड़ी देर में तीनों व्यक्ति सुरापान करने लगे।

"यह चिप्स तो खाओ ब्रजमोहन।"

ब्रजमोहन ने दो-एक चिप्स खाकर कहा–"यह तो आलू की पपड़ी मालूम होती है भई।"

"वह तो है ही!" रामनाथ ने कहा।

"लेकिन तुम तो मेरे साथ कई बार यहाँ खाना खा गये हो और चिप्स तुमने आज पहले-पहल ही खाया?" सुरेन्द्र बोला।

"पहले तो तुमने कभी मँगाया नहीं, आज ही मँगाया है।"

"हाँ, चिप्स जरा मैं कम खाता हूँ। मुझे ज्यादा पसन्द नहीं।"

कुछ देर तक तीनों व्यक्ति सुरापान करते रहे। सहसा ब्रजमोहन बोल उठा —"कभी घर पर भी खिलाओ यार, देखें तुम्हारे घर में कैसा खाना बनता है।"

शराब के नशे ने सुरेन्द्र को मुक्तहृदय तथा मुक्तजिह्वा कर दिया था। अतएव वह बोला —"क्या खाओगे? हमारे यहाँ तो इस समय वही पूरी साग बना होगा। दो तीन तरह का साग, रायता-सायता और पूरियाँ। वह मेरे गले से नहीं उतरतीं।"

"साग भी यदि ढङ्ग से बनाये जायँ तो बड़े स्वादिष्ट बन सकते हैं।"

"ढंग से बनाये जायँ तब न। भई, हमारा परिवार है बड़ा सब मिलाकर कोई पन्द्रह-बीस आदमी हैं, इस कारण घर में तो लङ्गरी खाना बनता है। प्याज-लहसन अछूत माना जाता है।"

"और यहाँ आप कबाब उड़ाते हैं।" रामनाथ बोला।

"बिना गोश्त के शराब का मजा नहीं।"

"सबेरे क्या करते हो?"

"सबेरे थोड़ा दाल-भात और रोटी खा लेता हूँ। पेट भरके इसी समय खाता हूँ।"

"क्या जीवन है। यह तो कहो, आप अमीर आदमी हैं, इसलिए निर्वाह हुआ चला जा रहा है, चाहे दोनों समय होटल में ही खाओ। प्रत्येक आदमी ऐसा नहीं कर सकता।"

मदिरा-पान कर चुकने पर सुरेन्द्र ने पुकारा —"ब्वाय!"

"वेटर कमरे के बाहर द्वार पर ही खड़ा था। वह 'हुजूर' कहकर अन्दर आया।

"खाना लाओ!" सुरेन्द्र ने कहा।

"क्या-क्या लाऊँ?"

"मेनू (भोजन की सूची) कहाँ है ?"

"यह आपके सामने ही तो धरा है।"

"ओ !" कहकर सुरेन्द्र ने मेनू उठा लिया। मेनू देखते हुए वह बोला—"रोगनजोश, आमलेट, चिकेन (मुर्गी), आलू-मटर, पराठे और पुडिङ्ग—सब तीन-तीन !"

बहुत अच्छा कहकर वेटर चला गया।

(२)

सुरेन्द्रनाथ एक सम्पन्न परिवार के व्यक्ति हैं। परिवार काफी बड़ा है। सुरेन्द्रनाथ पाँच भाई हैं। सब में बड़े सुरेन्द्र ही हैं। सुरेन्द्र से छोटे दो भाइयों का विवाह हो चुका है—शेष दो अभी क्रमशः ८ तथा १० वर्ष के हैं। सुरेन्द्र की माता हैं—पिता का देहान्त हो चुका है। एक विधवा बुआ है। एक विधवा चाची और उसके एक कन्या तथा एक पुत्र है। सुरेन्द्र की अपनी दो सन्तानें हैं—एक पुत्र, आयु ५ वर्ष; एक कन्या, आयु ४ वर्ष। सुरेन्द्र की आय काफी है। जमींदारी तथा जायदाद से उन्हें लगभग डेढ़ सहस्र रुपये मासिक आमदनी हो जाती है।

जब से सुरेन्द्र के पिता का देहान्त हुआ, तब से इनके परिवार का अनुशासन बिगड़ गया। माता, चाची तथा बुआ—ये तीनों स्त्रियाँ तो पूर्ववत् ही एक सूत्र में बँधी हुई चल रही हैं; परन्तु शेष सब जने अपने-अपने मन के हो गये। यहाँ तक कि छोटे बच्चे भी किसी की नहीं सुनते, अपने मन की ही करते हैं और उनको रोकने वाला भी कोई नहीं। वे बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों का शासन नहीं मानते—युवतियाँ उनपर शासन करना जानती नहीं।

दोपहर का समय था। रसोइया ब्राह्मण रसोई तैयार किये बैठा था और उसने कहला भेजा था कि रसोई तैयार है। परन्तु किसी के कान-

पर जूँ नहीं रेंगी। नौकरों ने दो-दो, तीन-तीन बार सब को सूचना दे दी कि रसोई तैयार है; परन्तु कोई तो स्नान कर रहा है, किसी ने स्नान नहीं किया, किसी का पूजन समाप्त नहीं हुआ, कोई बाजार गया है, वहाँ से नहीं लौटा। रसोइया झल्ला-झल्ला कर रह जाता था। कहार से बातें करते हुए वह बोला—"अब इस घर में हमारा गुजारा नहीं होगा।"

"ठीक कहते हो महाराज! सबेरे से लेकर रात के ग्यारह बजे तक दम मारने की छुट्टी नहीं मिलती। आखिर हम भी आदमी हैं, कोई मसीन तो हैं नहीं।"

"मसीन सुसरी भी गर्म हो जाती है, तो उसे ठण्ढा करने के लिए बन्द करना पड़ता है। अब बताओ, इधर सबेरे से लेकर तीन बजे तक जुटा रहना पड़ता है। तीन बजे छुट्टी मिलती है। उधर चार बजे से फिर साँझ की रसोई की तैयारी करनी पड़ती है। बीच में एक घण्टे की छुट्टी मिलती है। ऐसी नौकरी करके आदमी कितने दिन जी सकता है? भला तुम तो दो आदमी हो, मैं तो अकेला ही हूँ।"

"अरे महाराज, दो आदमी हैं तो क्या हुआ—तब भी तो छुट्टी नहीं मिलती—देखते नहीं हो क्या?"

"हाँ, देखता क्यों नहीं हूँ। एक आदमी तो नहलाने-धुलाने में रहता है, तुम यहाँ रसोई में रहते हो। हाँ, बाबू लोगों के खिदमतगारों को आराम है। इधर-उधर बजार घूम आये—बाबू लोगों के कपड़े उठा धर दिये—बस! हम लोग दिन-भर काम किये-किये मरे जाते हैं। भाई, मैं तो आज बड़े बाबू से कह दूंगा कि या तो एक महाराज और रखें—एक बखत मैं बनाऊँ, दूसरे बखत वह—या फिर मेरा भी इस्तीफा है। प्रान नहीं देने हैं। जरा जाकर देखो—अभी तक कोई सनका नहीं।"

कहार चला गया। थोड़ी देर बाद लौटकर बोला—"खाली धीरेन

बाबू आ रहे हैं, और तो अभी कोई सुनता नहीं।"

"धीरेन बाबू ही तो इस घर में एक समझदार आदमी हैं और तो सब—क्या कहूँ। बड़े बाबू तक की यही दशा है।"

"पर धीरेन बाबू की चलती नहीं।"

"यही तो बात है। उनकी चले, तो सब ठीक ही न हो जाय।"

इस समय धीरेन बाबू आ गये। यह सुरेन्द्र से छोटे हैं। बड़े सरल, बड़े सौम्य तथा समझदार हैं।

"क्या बना है भई?" धीरेन ने आसन पर बैठते हुए पूछा।

"उड़द की दाल, अरहर की दाल, आलू-गोभी का साग, सेम का साग, मटर की तहरी।"

"ठीक है!"

"लौकी का रायता है सरकार—दूँ?" कहार ने पूछा।

"हाँ, दे दो थोड़ा।"

ब्राह्मण ने परोस दिया। धीरेन ने भोजन करना आरम्भ किया। ब्राह्मण बोला—"सरकार, मेरी एक प्रार्थना है।"

"कहो।" धीरेन ने कहा।

"सरकार, मुझ से अब अकेले काम नहीं होता। इधर तीन बजे के पहले छुट्टी नहीं मिलती, उधर चार बजे से साँझ के लिए तैयारी करने लगता हूँ। आप तो खुद देखते हैं सरकार।"

"हाँ भाई, देखता तो हूँ, पर क्या करूँ? मेरी चलती है?"

"सरकार, आप भी तो मालिक हैं।"

"हाँ, लेकिन बड़े भैया के सामने मैं कभी कुछ नहीं बोलता। दो-एक बार कुछ बातों के लिए उनसे कहा, उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया, तब से मैंने कहना ही छोड़ दिया। कह के अपनी बात कौन खोवे।"

"अच्छी बात है, तो बड़े बाबू से कहूँगा। पर उनके तो दर्शन

दुर्लभ हैं। रसोई में तो कभी आते ही नहीं, वहीं अपने कमरे में मँगा लेते हैं—साँझ को वह यहाँ रहते ही नहीं।"

"यही तो सारी खराबी है—जब घर का बड़ा ही ठीक न रहेगा, तो छोटे कैसे रह सकते हैं।"

"ठीक बात है सरकार!"

"अजी, सब ठीक समय पर भोजन कर लें, तो कोई तकलीफ की बात नहीं। ग्यारह बजे तक मैं सब तैयार कर देता हूँ—सब तैयार हों, तो बारह—साढ़े बारह बजे तक मुझे छुट्टी मिल जाय। हद एक बज जाय, तब भी ३ घण्टे की छुट्टी मिल जाय। हम भी सरकार आदमी हैं, घण्टे-दो-घण्टे आराम करना हमारे लिए भी जरूरी है। इधर दोपहर को भी आराम न मिले, उधर रात को बारह-एक बजे तक सोने को मिले और सबेरे पाँच बजे फिर उठना पड़े। ऐसी दशा में आप ही सोचिये, हम कुछ पत्थर के बने तो हैं नहीं—और पत्थर भी घिस जाता है सरकार।"

"बिलकुल ठीक कहते हो।"

"कुछ और दूँ? एक फुलका और ले लीजिये, गरम-गरम है।"

"अच्छा बस, अब नहीं चाहिए। बड़े बाबू से कहना, देखो क्या कहते हैं? सवेरे चाय के समय पहुँच जाना। उस समय मिल जायँगे।"

"मैं खुद ही चाय लेकर जाऊँगा।"

"हाँ, यह ठीक है।"

"अरे महंगू, देख और जो तैयार हों, उन्हें बुला ला।" ब्राह्मण ने कहार से कहा।

कुछ देर बाद कहार आकर बोला—"छोटे बाबू और बच्चे आ रहे हैं। बड़ी बहू अभी पूजा पर से नहीं उठीं, उनके साथ ही मँझली भी आवेंगी, छोटी ने अभी नहाया नहीं है—अब जा रही हैं। अम्मां,

चाची और बुआ जी पूजा कर चुकी हैं, अभी आती हैं।"

"बारह बज गये होंगे ?" ब्राह्मण ने धीरेन से पूछा।

धीरेन बाबू हाथ धोते हुए बोले—"हाँ, सवा बारह पर तो मैं आया था।"

"मैं कल ही बड़े बाबू से कहूँगा, आपके सामने बात आवे, तो आप थोड़ा जोर लगा देना सरकार—एक आप ही इस घर में ऐसे हैं, जो हमारी बात सुनते और समझते हैं।"

"हाँ, जरूर कहूँगा। गरीब आदमी को इस तरह परेशान करना कहाँ की इन्सानियत है। गरीब के क्या जान नहीं होती !"

(३)

छोटे बाबू ने उस दिन रसोई में भोजन नहीं किया। मोटर लेकर होटल चले गये। कारण यह था कि उन्होंने जमीकन्द की तरकारी और मीठे चावलों की फरमायश की थी, परन्तु वे नहीं बने। रसोइये से किसी ने कहा ही नहीं, इसलिए उसने नहीं बनाये। रसोइया सबेरे माताजी से पूछ लेता था, वह जो आज्ञा दे देती थीं, वही बनाता था। छोटे बाबू इतने नाराज हो गये कि उन्होंने सन्ध्या को भी होटल में ही खाया।

सबेरे का समय था। तीनों भाई चाय की मेज पर बैठे थे। इसी समय माता जी आ गयीं। उन्होंने आते ही नरेन्द्र (छोटे बाबू) से पूछा—"कल तूने खाना क्यों नहीं खाया ?"

नरेन्द्र ने कोई उत्तर नहीं दिया। धीरेन्द्र ने उससे कहा—"जवाब दो, माता जी क्या पूछ रही हैं।"

नरेन्द्र धृष्टता पूर्वक बोला—"क्या जवाब दूँ, जब घर में मन का खाना ही न बने, तब क्या खाऊँ। मैंने मीठे चावल और जमीकन्द के लिए कहा था, पर किसी ने समात नहीं की।"

माता बोली—"भई मुझसे तो किसी ने कहा नहीं और न मैंने किसी से पूछा। पूछने में सब अपने-अपने मन की कहते हैं, सब के मन की चीज़ें बनवायी जावें, तो दिन-भर में भी न बन पावें। इससे मैंने पूछने का काम ही नहीं रखा।"

"तो यह कहिये न, आप अपने मन का खाना बनवाती हैं। तो फिर आप ही खाया भी कीजिये। कोई खाय या न खाय, आप की बला से। इसीलिए बड़े भैया भी नहीं खाते। क्या करें, जब मन का खाना न मिले, तो खाने से फायदा?"

"तो खाना कुछ खराब तो बनता ही नहीं और मैं तो खुद बदल-बदल कर चीजें बनवाती रहती हूँ। अभी चार दिन हुए, जमीकन्द बना ही था, मीठे चावल भी बनते ही रहते हैं। ऐसी कौन चीज है, जो नहीं बनती? क्यों बेटा धीरेन, कल खाना कुछ खराब था क्या?"

"खराब तो किसी दिन भी नहीं बनता। अपनी-अपनी समझ है।"

"अच्छा बनता है, तो बड़े भैया क्यों नहीं खाते?"

"यह बड़ा भैया जाने, मैं क्या जानूँ।" माता ने कहा।

धीरेन का मुख लाल हो गया। वह आवेश के साथ बोला—"बड़े भैया जानें या न जानें, पर मैं जानता हूँ कि अपने यहाँ खाना अच्छा बनता है। वैष्णवी भोजन जैसा अपने यहाँ बनता है, उससे अच्छा कहीं नहीं बन सकता। हाँ, जिन्हें प्याज-लहसुन और अण्डे-मछली खाने की चाट पड़ी हुई है, उनके लिए हमारे यहाँ का खाना निस्सन्देह रद्दी है। और रही यह बात कि आपके मन की चीजें क्यों नहीं बनीं, सो आपको माता जी से या रसोइये से कहना चाहिए था—तब न बनतीं, तो आपकी शिकायत ठीक थी। और वैसे तो सही बात यह है कि जैसा माता जी अभी कह चुकी हैं कि सबके मन की चीजें बनें, तो दिन-भर चूल्हा गर्म रहे। बड़े परिवार में ऐसा सम्भव नहीं हो सकता। अगर

आपको कोई खास चीज बनवानी है, तो अपने कमरे में अपनी पत्नी से बनवा लिया कीजिये। रसोई में हर एक की फरमायश नहीं बन सकती।"

"तो फिर इसके अर्थ यह हुए कि मैं अपना चूल्हा अलग ही बना लूँ, जब मेरी पत्नी एक चीज बनायेगी, तो पूरा खाना ही न बना लेगी।"

"चूल्हा बनाने की क्या जरूरत है, होटलों की कमी है क्या?" धीरेन ने व्यंग से कहा।

"बड़े भैया तो होटल में खाने ही लगे हैं, अगर आपकी इच्छा है, तो मैं भी खाने लगूँगा।"

"खाने लगूँगा! मानो अभी नहीं खाते हैं। बड़े भैया होटल में खाते हैं, तो कौन भला काम करते हैं। यदि हम सब ऐसा करने लगें, तो छुट्टी हो जाय। यह प्रथा बड़े भैया ने ही तो डाली है, अन्यथा तुम्हारी मजाल थी कि ऐसी बात मुँह से निकाल लेते।"

सुरेन्द्र बाबू बोल उठे—"भई, तुम लोग मुझे व्यर्थ ही बीच में घसीटते हो। मैं क्या खाता हूँ और कहाँ खाता हूँ, इससे तुम लोगों को क्या मतलब?"

"मुझे तो कोई मतलब नहीं है और न मैं रखना चाहता हूँ; परन्तु जो मतलब रखना चाहते हैं, उनके लिए आपका यह ढङ्ग काफी उत्साह-प्रद है।" धीरेन ने कहा।

माता बोल उठी—"बड़ा भाई जो करता है, वही जो छोटा भी करे, तो उसे कौन मना कर सकता है?"

"बड़ा भाई भाड़ में गिरे, तो क्या छोटा भी गिरेगा? तुमने भी खूब कहा।" सुरेन्द्र कर्कश स्वर में बोला।

"भाड़ में चाहे न गिरे, पर होटल के मज़े लेने से क्यों चूके?"

"तुम बड़े गुस्ताख होते जाते हो धीरेन।" सुरेन्द्र ने सरोष कहा।

"इस गुस्ताखी के लिए आप मुझे जैसा चाहें वैसा दण्ड दे लें, परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि आपके रङ्ग-ढङ्ग हमारे परिवार के लिए घातक हैं। इस प्रकार हमारा परिवार अस्त-व्यस्त हो जायगा।" इतना कहकर धीरेन्द्र वहाँ से उठ गया।

"धीरेन्द्र ठीक कहता है। अब इस परिवार का भगवान ही मालिक है।" माता दुःखपूर्ण स्वर में बोली।

"हाँ, जब खाने-पीने-जैसी छोटी-छोटी बातों में झगड़ा होगा, तब तो सचमुच भगवान मालिक है।" सुरेन्द्र बोला।

"तो झगड़ा उठाता कौन है? पहले तुमने झगड़ा उठाया और अब तुम्हारी देखी-देखी यह नरेन्द्र उठा रहा है। और तो कोई चूँ नहीं करता।"

इसी समय रसोइया ब्राह्मण आया और हाथ जोड़कर बोला—"सरकार, मेरा एक उजर है।"

"बोलो!"

रसोइये ने अपनी शिकायत कह डाली।

सुरेन्द्र भवें सिकोड़कर बोले—"तो तुम्हारा यह मतलब है कि तुमसे अकेले काम नहीं होता?"

"यह बात नहीं है सरकार। जो रसोई तैयार होते ही घण्टे-डेढ़-घण्टे में सब लोग जीम लें, तब तो मैं अकेला ही कर सकता हूँ; पर जब किसी का कोई समय ही नहीं, तब तो मुझसे नहीं हो सकता।"

"यह प्रबन्ध तो माता जी तुम्हें करना चाहिए।"

"मैं क्या अपनी खोपड़ी दे मारूँ। किस-किस को पकड़ती फिरूँ,। मेरी कोई सुनता है। सब अपने-अपने मन के हो रहे हैं। तेरा ही कोई समय नहीं, दूसरे को क्या कहूँ। कभी खायेगा, कभी नहीं खायेगा और जब खायगा, तो किस समय खायगा, इसका कोई ठीक ही नहीं रहता। सबेरे

निकल जायगा तब कुछ बता नहीं जायगा कि खायगा कि नहीं और कभी बारह बजे लौटेगा, तब नहाते-धोते एक-डेढ़ बज जाता है, कभी डेढ़-दो बजे लौटकर कह देगा कि नहीं खायगा। इस तरह मैं क्या प्रबन्ध करूँ। यही इस नरेन्द्रकी दशा है। हाँ, बेचारा धीरेन्द्र तो समय पर खा लेता है—उसे नहीं कहना पड़ता—बाकी सब का यही हाल है। चार दफा कहा जाता है कि रसोई तैयार है, तब तो बहूरानियाँ नहाने उठती हैं। नहा के फिर पूजा करती हैं। इसी मारे डेढ़-दो बज जाते हैं। मुझे क्या, मैं और तेरी बुआ और चाची तो बारह बजे तक पूजा-वूजा से निबट लेती हैं। अब जो सब के पहले हमीं जीमने बैठ जायँ, तो यह भी अच्छा नहीं लगता। और फिर हमारे जीम लेने से होगा भी क्या ? इस बेचारे की जान तो तभी छूटेगी, जब सब जीम लेंगे।"

"क्या मजाक है। हमारे यहाँ खाने का ही झगड़ा पैदा हो गया। कोई सुने, तो क्या कहे ?"

"तो यह झगड़ा मैंने पैदा किया है ?" माता ने पूछा।

"मर्दों को छोड़ दो—परन्तु कम से कम स्त्रियों और बच्चों को तो तुम समय पर खिला दे सकती हो, या इतना भी तुम नहीं कर सकतीं।"

"बच्चे तो समय पर खा ही लेते हैं, उन्हें खा के स्कूल जाना पड़ता है। हाँ, छुट्टी के दिन वे भी नहीं सुनते। सबेरे ठूँस के नाश्ता कर लेते हैं—भूख लगती नहीं, इसलिए वे भी टालते फिरते रहते हैं। यही हाल बड़ों का है। वे भी पेट भरके नाश्ता कर लेते हैं, तब जल्दी भूख कैसे लगे। इसी मारे टालते रहते हैं। हम तीनों नाश्ता नहीं करतीं—हमसे कोई पूछे। बारह बजे तक ऐसी कड़कड़ाके भूख लगती है कि चैन नहीं पड़ता।"

"तो नाश्ता बन्द कर दो।" सुरेन्द्र ने कहा।

"मेरे सिर में इतने बाल कहाँ हैं जो नाश्ता बन्द कर दूँ। पहले तू

ही अपना बन्द कर।"

"बस, घूम-फिर के मेरे ही पीछे लग जायँगी।"

"तेरे पीछे तो सारा घर है। सब तेरा ही सहारा पकड़ते हैं। तू जैसा करेगा, सब वैसा ही करेंगे।"

"अच्छा महाराज, जाओ, मैं इसका प्रबन्ध करूँगा।"

"बहुत अच्छा सरकार।" कहकर रसोइया चला गया।

(४)

जब किसी परिवार का अनुशासन बिगड़ता है तब उसमें कलह का जन्म होता है। और कलहदेवी जब एक बार घर में प्रविष्ट हो जाती हैं, तब कुछ न कुछ बलिदान लिये बिना नहीं टलतीं—देवी ही जो ठहरीं।

सुरेन्द्रनाथ के परिवार का अनुशासन बिगड़ गया और वह ऐसा बिगड़ा कि फिर सुधारे न सुधरा। क्रमशः कलहका प्रादुर्भाव हुआ। तीनों भाइयों में परस्पर कलह होने लगी। सुरेन्द्रनाथ अपना रङ्ग-ढङ्ग बदलना नहीं चाहते थे और उसे बदलने का आत्मबल भी उनमें नहीं था। बिना अपने को बदले हुए वह दूसरों को बदलना चाहते थे—यही उनकी असफलता का कारण था। वह समझते थे कि वह घर के बड़े हैं। अतएव छोटों को उनके आचरणों पर ध्यान न देकर केवल उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। परन्तु इसमें कठिनता यह थी कि छोटों में भी बुद्धि थी, विचार शक्ति थी और साथ ही अपने अधिकारों को कार्यान्वित करने की इच्छा भी। "यदि उन्हें अपनी रुचि के अनुसार कार्य करने का अधिकार है, तो हमें भी है।" इस दफा के अनुसार कोई भी दबने के लिए प्रस्तुत नहीं था। परिणाम यह हुआ कि कलह की आग क्रमशः बहुओं में फैली। स्त्रियों में पालन-पोषण करने की प्राकृतिक क्षमता होती है। अतएव स्त्रियों के मध्य पहुँच जाने से कलह का भी

खूब ही पालन-पोषण होता है। सुरेन्द्रनाथ के यहाँ स्त्रियों की कमी नहीं थी। इतनी स्त्रियों द्वारा कलह देवी का पालन-पोषण किये जाने के कारण वह प्रति दिन मोटी-ताजी होती गयी। अन्त को एक दिन वह आ पहुँचा, जब तीनों भाई बँटवारा करके अलग हो जाने की बात सोचने लगे। यह विचार प्रतिदिन पुष्ट होता गया और अन्त में बँटवारा होना निश्चित हो गया। माता ने बहुत प्रयत्न किया कि घर तथा परिवार एक सूत्र में बँधा रहे, शुभाकांक्षी मित्रों तथा रिश्तेदारों ने भी ऐसा ही प्रयत्न किया; परन्तु ऐसे लोगों की भी कमी नहीं थी, जो बँटवारा हो जाने में ही भलाई सोचते थे। इनमें से कुछ तो अनुभव हीनता के कारण शुद्ध हृदय से और कुछ इस परिवार को अस्त-व्यस्त देखकर अपने कलुषित हृदय को प्रसन्न करने के लिए ऐसा करते थे। अन्त को बँटवारा होकर ही रहा। सब जायदाद, रुपया-पैसा तथा माल-असबाब छः भागों में बँट गया। पाँच भाग पाँचों भाइयों को मिले। इनमें से दो छोटे नाबालिग भाई माँ की संरक्षता में दिये गये। माता ने धीरेन्द्र के साथ रहना स्वीकार किया। एक भाग सुरेन्द्रनाथ की चाची को मिला। सुरेन्द्रनाथ की बुआ को भी धीरेन्द्र ने अपने साथ रख लिया।

इसका परिणाम यह हुआ कि जो परिवार पहले बड़ा सम्पन्न, समृद्धिशाली तथा प्रतिष्ठित समझा जाता था, वह मध्यम श्रेणी के जनसमूह में मिलकर विलीन हो गया। सुरेन्द्रनाथ की आमदनी अब केवल ढाई सौ रुपये मासिक के लगभग रह गयी थी। अतएव अब न मोटर थी, न चार खिदमतगार थे, न शानदार कोठी। मोटर का स्थान साइकिल ने ले लिया था, चार खिदमतगार की जगह केवल दो नौकर, एक पुरुष तथा एक स्त्री, और शानदार कोठी की जगह पचीस रुपये महीने किराये की योग्यता एक साधारण मकान। यही दशा नरेन्द्र की हुई। अलबत्ता धीरेन्द्र की दशा इन दोनों से कहीं अच्छी थी, क्योंकि उसके प्रबन्ध में

उसके हिस्से के अतिरिक्त दो छोटे भाइयों का और अपनी चाची का भी हिस्सा था। अतएव वह बंगले में रहता था, एक मोटरकार भी थी और तीन-चार नौकर भी।

शाम का समय था। सुरेन्द्रनाथ पैदल एक ओर लपके जा रहे थे। हठात् सामने से रामनाथ आता दिखाई पड़ा। रामनाथ ने पूछा—"कहाँ जा रहे हो?"

"कहीं नहीं, ऐसे ही जरा एक काम से जा रहा हूँ।"

"तुम आज पैदल कैसे?"

"कार जरा मरम्मत के लिए गयी है और इस समय वाकिंग की इच्छा थी।"

"तुमने भाइयों से अलग होकर अच्छा नहीं किया और मैंने मना किया था।"

सुरेन्द्र बोला—"जो होतव्यता थी, सो हुई। और मैं न भी चाहता तो क्या होता धीरेन और नरेन्द्र तो न मानते।"

"तुम मानते, तो सब मान जाते।"

"ख़ैर जी, यह भी अच्छा ही हुआ। शान्तिपूर्वक बैठे तो हैं। न किसी से कहा न सुनी, न लड़ाई न झगड़ा। अच्छा, अब चलूँगा।"

सुरेन्द्रनाथ चल दिये। जो सुरेन्द्र पहले रामनाथ को ढूँढते फिरा करते थे, वही अब कावा काटने लगे। सुरेन्द्रनाथ चलते-चलते एक थर्ड क्लास होटल में पहुँचे और एक कोने में चुपचाप जाकर बैठ गये। ब्वाय के आने पर उन्होंने उससे कहा—"दो पेग रम और एक प्लेट कोरमा।"

"और कुछ—आमलेट, रोगनजोश?" ब्वाय ने पूछा।

"बस!" कहकर सुरेन्द्र ने एक दीर्घश्वास खींची।

ढपोर शङ्ख

पं० गदाधर प्रसाद एक धनी वैश्य के कृष्णमन्दिर में पुजारी थे। वेतन के अतिरिक्त दोनों समय भगवान का प्रसाद पाते थे। कुछ दान-दक्षिणा मिल जाता था और जब भगवान की सेवा से अवकाश मिलता था तो मन्दिर में ही बैठे जन्मपत्र, वर्षपत्र इत्यादि बनाया करते थे, इससे भी उन्हें कुछ आय हो जाती थी। मन्दिर के बगल में ही एक छोटा सा मकान था जो मन्दिर के स्वामी का ही था, उसमें वह परिवार सहित रहते थे। इस प्रकार उनका जीवन-निर्वाह होता था।

प्रातःकाल नौ बजे का समय था। लाला जी की प्रौढ़ पत्नी, मन्दिर की मालकिन, गंगा स्नान करके लौटते हुये भगवान के दर्शन करके घर जाती थीं। मन्दिर से उनका घर एक फ़र्लाङ्ग की दूरी पर था। आज भी वह नियमानुसार दर्शन करके आई थीं। दर्शन तथा परिक्रमा का कार्य समाप्त करने के पश्चात् सेठानी जी पंडित जी से बोलीं—"पण्डित जी! कल रात लाला जी को बुखार आ गया। जान पड़ता है सर्दी खा गये! सबेरे पानी बरसा था उसमें नहाते रहे। मैंने मना भी किया पर मेरी बात तो मानते ही नहीं। ऐसा जिद्दी आदमी तो देखा ही नहीं।"

पण्डित जी मुस्करा कर बोले,—"हाँ यह तो आप यथार्थ कहती हैं, कुछ जिद्दी तो वह हैं।"

"कुछ नहीं बहुत जिद्दी हैं। अपनी जिद्द पर चढ़ जाते हैं तो दुनिया की नहीं मानते।"

"हाँ होता ही है। किसी-किसी का स्वभाव ही जिद्दी होता है।"

"ऐसा सुभाव किस काम का, और जिद्द से सदा दुख ही भोगते हैं फिर भी नहीं मानते।"

पण्डित जी केवल मुँह बना कर रह गये। बेचारे करते क्या? लाला जी की निन्दा कर ही नहीं सकते थे न सेठानी जी की बातों का विरोध कर सकते थे, अतएव मौन हो जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था।

"मैं अभी जाकर उनकी जनम पत्तरी भेजूँगी, जरा देखना तो कोई गिरह खराब तो नहीं है।" सेठानी जी बोलीं।

"हाँ! हाँ और वर्ष भी भेजना।"

"अच्छा! कोई गिरह खराब हो तो जाप-वाप करा दूँ।"

"हाँ! हाँ! वह सब हो जायेगा।"

"और जरा किसी बखत आकर जल छिड़क जाना।"

"सो तो मैं स्वयं आता। आपके कहने की जरूरत नहीं है।"

"तो जनम पत्तरी भी वहीं आकर देख लेना।"

"हाँ! हाँ! आप चलें मैं भगवान का भोग लगा कर आ जाऊँगा।"

"भोग तो तैयार होगा। मैं अभी जाकर भिजवाती हूँ"—कहकर सेठानी जी चली गईं।

सेठ जी के बीमार होने का समाचार पाकर जप-दान की अपेक्षा से पण्डित जी का चित्त कुछ प्रफुल्लित हो गया। "परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्" को अपने स्वरचित राग में, जो संगीत शास्त्र के समस्त नियमों का अपवाद होने की विशेषता रखता था, गाते हुये मन्दिर के द्वार पर आकर खड़े हो गये। सड़क पर एक खीरेवाला—"क्या मुलायम खीरे हैं" चिल्लाता हुआ जा रहा था। आपने गाना स्थगित करके पुकारा "ओ खीरे वाले! देखें कैसे खीरे हैं।" खीरे वाले ने मन्दिर के पत्थर पर आकर झल्ली रक्खी और एक खीरा उठा-

कर पण्डित जी को दिखाते हुये वह बोला—"देखिये, कैसा बढ़िया खीरा है।" पण्डित जी ने खीरा हाथ में लेकर उसका नखशिख बड़े ध्यान से देखा; फिर उसे सूँघा। सूँघ कर बोले—"बासी मालूम होते हैं।"

"बासी होय तो पैसा न देना", खीरे वाला बोला।

"कैसे दिये ?"

"दो-दो लगा दिये हैं।"

"चार देओ; छोटे-छोटे तो हैं।"

खीरे वाला झल्ली उठाने के लिए उद्यत होकर बोला—"माल तो देखिये।"

"अच्छा तीन देओ।"

कुछ हुज्जत होने के पश्चात् खीरेवाला राज़ी हो गया। पण्डित जी झल्ली के पास बैठ गये और स्वयं ही खीरों का निर्वाचन करने लगे। खीरेवाले की समस्त सिफारिशों की उपेक्षा करते हुये आपने झल्ली में से तीन खीरे ढूँढ़ निकाले। बाँये हाथ में खीरे लेकर, दाहिने हाथ से टेंट में से पैसा निकाल कर खीरेवाले को दिया और पुनः वही स्थगित राग आरम्भ किया परन्तु इस बार पद दूसरा था। "कोटि-कोटि मुनि जतन कराहीं" इत्यादि गाते हुये आपने तीन-चार ताक देखे और चाकू ढूँढ़ निकाला। इसके पश्चात् आप इधर-उधर देखने लगे। भगवान के समीप वेदी पर एक दोने में कुछ पुष्प रक्खे हुये थे। आपने पुष्प तो वेदी पर उलट दिये और दोना लेकर अपने आसन पर आ बैठे। एक खीरा हाथ में लेकर आप आपरेशन करने ही वाले थे कि फिर कुछ याद आ गया। "उँह !" कह कर पुनः उठे और परिक्रमा में घुस गये और कुछ क्षणों पश्चात् थोड़ा नमक हथेली पर लिये हुये निकले। दोने में से ज़रा सा पत्ता फाड़ कर आपने नमक उस पर

रक्खा। तत्पश्चात् पुनः आसीन हो गये। राग पुनः स्थगित हो गया था। पण्डित जी खीरों का कलाकुमा कर ही रहे थे कि रसोइया ब्राह्मण भोग लेकर आ गया। वेदी के निकट भोग की थाली रख कर वह जाने लगा तो पण्डित जी बोले, "अरे यार एक नींबू और दो तीन हरी मिर्च भिजवा देना।"

"अच्छा!" कह कर रसोइया जाने लगा।

"भूल न जाना और जाते ही भिजवा देना।"

थोड़ी देर में एक कहार एक नींबू और चार पाँच हरी मिर्च लेकर आ गया। पण्डित जी ने दो मिर्च कतर कर खीरों में मिलाई, नींबू निचोड़ा और नमक मिला दिया। इसके पश्चात् उठे, हाथ धोये और भगवान का भोग लगाने का आयोजन करने लगे।

भगवान का भोग लगाने के पश्चात् प्रसाद स्वयं भक्षण करके पण्डित जी ने रामनामी ओढ़ी और लाला जी के यहाँ पहुँचे। लाला जी पलंग पर लेटे थे। उनके पास ही सेठानो जी शीतलपाटी पर विराजमान थीं।

पण्डित जी कुछ पुष्प ले गये थे। पहिले उन्होंने "सर्वाबाधा विनिर्मुक्तो" इत्यादि का पाठ करके लाला जी को पुष्प दिये। लाला जी ने पुष्प नेत्र तथा मस्तक से छुवाकर अपने सिरहाने रख लिये। पण्डित जी एक दूसरी शीतलपाटी पर बैठ गये। सेठानी जी उठीं और एक अल्मारी से उन्होंने सेठ जी का जन्मपत्र निकाला। पण्डित जी बड़े ध्यान से जन्मपत्र देखने लगे। दस मिनट तक विचार करके, सिर हिलाते तथा मुँह बनाते हुए पण्डित जी ने "हूँ" कहा। सेठानी जी ने पूछा—"कैसे गिरह हैं?"

"और तो सब अच्छा है, ख़ाली चन्द्रमा बिगड़ा हुआ है। चन्द्रमा छठे रोगकारी होता है। छठा स्थान रोग का है। चन्द्रमा उस स्थान में

बैठा है और उसी की दशा लगी है, इसीलिए शीत के कोप से रोग हुआ है। चन्द्रमा शीतल होता है इस कारण सर्दी का रोग उत्पन्न करता है। परन्तु कोई चिन्ता की बात नहीं। जप-दान में बड़ी शक्ति है, सब ठीक हो जायगा।"

"चन्द्रमा का दान क्या होगा?" लाला जी ने पूछा।

"यही—कुछ चाँदी, मोती, श्वेत कपड़ा, चावल, दही, शक्कर, घृत, श्वेत गाय—बछड़े सहित हो तो बहुत ही उत्तम है और एक लक्ष चन्द्रमा का जाप। बस इतने से पूर्ण शान्ति हो जायगी।"

"जो गऊ न मिले तो?" सेठानी जी ने पूछा।

"तो गऊ का मूल्य दे दिया जाय।"

"अच्छी बात है तो कल सवेरे दान करा देना। जाप कौन करेगा?"

"मैं किसी से करा दूँगा।"

"अच्छी बात है। जाप कराई क्या पड़ेगा?"

"पचीस रुपये लक्ष का हिसाब है। वैसे आपकी जो इच्छा हो दे देना। यह तो घर की बात है।"

"घर की बात है तो क्या हुआ, जो वाजिबी है वह तो दिया ही जायगा।" सेठानी जी बोलीं।

"सो तो भगवान का दिया सब कुछ है। कमी किस बात की है।"

लाला जी ने कहा—"जाप का संकल्प करा देना।"

"कल सवेरे जाप करने वाले को ले आऊँगा, संकल्प दे दिया जायगा।"

सब निश्चित हो जाने पर पण्डित जी थोड़ी देर और बैठे। तत्पश्चात् आशीर्वाद देकर बिदा हुए। वह मन्दिर न जाकर सीधे घर पहुँचे। पत्नी से बोले—"रामलाल के लिए जाप ठीक किया है।"

पत्नी प्रसन्न होकर बोली—"कहाँ?"

"अपने लाला के यहाँ, पचीस रुपये मिलेंगे।"

"बड़ा अच्छा है। आजकल वह तकलीफ़ में भी हैं।"

"देख लो! हम तुम्हारे भाई का कितना ख़याल रखते हैं।" पण्डित जी मुस्करा कर बोले।

"ख़याल रखना ही पड़ेगा। ख़याल रखते हो तो कोई एहसान करते हो?"

"तुम एहसान न मानो। तुम्हारे न मानने से क्या होता है।"

"चलो रहने दो। बड़े एहसान जतानेवाले आये!"

"अच्छा तो मैं मन्दिर जाता हूँ। उसे बुलवा लेना।"

इतना कहकर पण्डित जी मन्दिर चले आये।

मन्दिर आकर बैठे ही थे कि उसी समय एक व्यक्ति पीठ पर एक ट्रङ्क लादे तथा हाथ में एक गठरी लिये निकला। पण्डित जी को देखकर वह बोला, "कुछ मूँगा, मोती चाहिये?"

पण्डित जी बोले—"नहीं।"

"कोई शंख वंख। मेरे पास एक शंख बहुत बढ़िया है। मन्दिर के लिए ले लीजिये।"

"क्या बढ़ियापन है उसमें?"

"शास्त्रों में जैसा विष्णु भगवान का शंख लिखा है, वैसा ही है।"

अब पण्डित जी की उत्सुकता बढ़ी, बोले—"विष्णु भगवान जैसा शंख, देखें।"

उस व्यक्ति ने गठरी रक्खी और पीठ पर से ट्रङ्क उतार कर धरा, तत्पश्चात् ट्रङ्क खोल कर एक मझोले आकार का अत्यन्त श्वेत शंख निकाल कर पण्डित जी को दिखाया। "देखिये कितना सफ़ेद है। और यह पाञ्चजन्य भी है।"

"क्या?" पण्डित जी आँखें फाड़ कर बोले।

"देखिये सब शंखों में तीन चार रेखाएँ होती हैं, इसमें पाँच हैं।" यह कह कर उसने शंख पण्डित जी के हाथ में दे दिया।

"गिन लीजिये।"

पण्डित जी ने रेखाएँ गिनी तो पाँच थीं। पण्डित जी बोले—"तो क्या सब शंखों में पाँच रेखाएँ नहीं होतीं?"

"न! आपके यहाँ शंख होंगे, देख लीजिये।" पण्डित जी जल्दी से उठे। भगवान की वेदी पर दो शंख रक्खे हुये थे। उन्हें उठाकर उनकी परीक्षा की और बोले—"इनमें तो चार-चार हैं।"

"चार से ज्यादा किसी में न मिलेंगी। चाहे जितने देख लीजिये।"

पण्डित जी ने बाहर आकर अपने घर की ओर मुँह करके पुकारा—"घस्सू रे! ओ घस्सू!" तीन-चार आवाज़ें लगाने पर एक अष्टवर्षीय बालक आकर बोला—"क्या है चाचा?"

"घर में जो शंख है, वह जरा दौड़ कर उठा तो ला।"

इतना कहकर आप अपने स्थान पर आ बैठे।

वह व्यक्ति बोला—"विष्णु भगवान का जो पाञ्चजन्य शंख है उसमें भी पाँच रेखाएँ हैं इसी लिए वह पाञ्चजन्य कहलाता है।"

"अच्छा! यह नई बात मालूम हुई।"

"हाँ! मुझे भी नहीं मालूम थी। मैं जब रामेश्वरम् गया तो वहाँ एक बूढ़े पण्डित ने बताया था। बड़े विद्वान् हैं। सारे वेद शास्त्र उन्हें कंठ हैं। उन्होंने कहा था, "जिसे पाँच रेखा का शंख मिल जाय उसे बड़ा भाग्यवान समझो। आजकल कलियुग में उसके दर्शन दुर्लभ हैं।"

पण्डित जी ने बड़े ध्यान से पुनः शंख की परीक्षा की। इसी समय घस्सू शंख लेकर आ गया। पण्डित जी ने उसकी रेखाएँ गिन कर कहा "इसमें भी चार ही हैं।"

वह व्यक्ति बोला—"आप हजार शंख देखें तब भी चार से अधिक

नहीं मिलेंगी। आप इसे ले लीजिये, मंदिर में रखिये। साक्षात विष्णु का वास आपके मंदिर में हो जायगा।"

पण्डित जी बोले—"अच्छा! बोलो, क्या लोगे?"

"इसके दाम तो कोई क्या दे सकता है; पर मैं इस समय मुसीबत में हूँ। परदेश आ गया हूँ, रुपये की जरूरत है इसलिए आपको पचास रुपये में दे दूँगा।"

"पचास रुपये! पचास तो बहुत हैं।"

"चीज़ भी तो ऐसी है कि लोग इसके दर्शन करने आवेंगे। जो जानता है वही इसकी कदर कर सकता है। किसी रजवाड़े में चला जाऊँ तो न जाने क्या मिल जाय। पर इस समय तो मजबूरी है। बड़े कष्ट में पड़कर बेच रहा हूँ।"

पण्डित जी कुछ क्षणों तक विचार करके बोले—"अच्छा तुम मेरे साथ सेठ जी के यहाँ चलो, यही सामने घर है। उनसे कह कर खरिदवा लूँगा। पर दाम कुछ कम करो।"

"अरे पण्डित जी! दाम-वाम कम न कराओ। पचास रुपये इस पर निछावर हैं।"

"अच्छा चलो तो", पण्डित जी उठते हुये बोले।

पण्डित जी शंखवाले को लेकर सेठ जी के यहाँ पहुँचे। उसे नीचे बिठाकर आप शंख लिये हुये लाला जी के पास पहुँचे।

सेठानी जी ने पूछा--"जाप का संकल्प........।"

बात काट कर पण्डित जी बोले—"नहीं आज एक अपूर्व चीज़ हाथ आ गई है।"

यह कह कर पण्डित जी ने लाला जी तथा सेठानी जी को शंख दिखाया और उसकी विशेषता भी बता दी।

लाला जी शंख देख कर बोले—"शंख तो बड़ा सुन्दर है।"

सेठानी जी दौड़कर अपना शंख उठा लाईं। उसकी रेखाएँ गिनीं तो चार ही निकलीं।

पण्डित जी बोले—"सब में चार ही मिलेंगी। इसे तो विष्णु भगवान के शंख का जोड़ीदार समझिये।"

"क्या दाम माँगता है, लाला जी ने पूछा?"

"दाम तो बहुत मांगता था, पर मैंने पचास में ठीक किया है।"

"पचास! लाला जी आँखें फाड़कर बोले।"

"सच पूछिये तो पचास में भी सस्ता है। ऐसी चीज़ मिलती कहाँ है। वह तो रुपये की तंगी से बेचे डाल रहा है, नहीं तो यदि किसी रियासत में चला जाय तो न जाने क्या मिल जाय। जिसके यहाँ यह शंख हो उसके यहाँ साक्षात लक्ष्मी का वास हो जाता है।"

लाला जी के बोलने के पूर्व ही सेठानी जी बोल उठीं—"तब तो मैं जरूर लूँगी। मैं अपने पास से रुपये दे दूंगी।"

लाला जी मौन रहे।

सेठानी जी ने झट से अल्मारी खोल कर दस दस के पाँच नोट निकाल कर पण्डित जी को दिये। पण्डित जी बोले—"आप बड़े भाग्यवान हैं। ऐसी चीज़ भाग्य वाले को ही मिलती है। आज इस शंख को पाकर भगवान प्रसन्न हो जायँगे।"

पण्डित जी शंख लिये हुये नीचे आये। शंखवाले को साथ लेकर मन्दिर आये। वहाँ आकर बोले—"भई, दाम कुछ कम करो।"

"ऐसी चीज़ के आप दाम कम कराते हैं।"

पण्डित जी ने चालीस रुपये निकाल कर दिये।

शंखवाला बोला—"पाँच तो और दीजिये।"

"बस इससे अधिक एक पैसा न मिलेगा। लेना हो तो लो, नहीं यह तुम्हारा शंख धरा है।" शंख वाले ने मुँह बनाकर रुपये रख लिये और

कहा—"समय की बात है। ख़ैर! कौड़ी मोल दिये जा रहा हूँ।" शंखवाला चला गया।

* * *

सन्ध्या समय पण्डित जी के एक मित्र, जो बड़े विद्वान और अच्छे ब्राह्मण थे, पण्डित जी से मिलने आये। पण्डित जी ने कहा—"आज मैंने एक अपूर्व चीज़ ली है।" यह कहकर पण्डित जी ने उन्हें शंख दिखाया।

दूसरे पण्डित उसे देखकर बोले—"इसमें क्या विशेषता है?"

"इसमें पाँच रेखाएँ हैं जैसी भगवान विष्णु के पाञ्चजन्य में है।"

दूसरे पण्डित ने रेखाएँ देखी और मुस्कराकर बोले—"यह आपसे किसने कहा कि पाञ्चजन्य में पाँच रेखाएँ हैं।"

"मुझे यह बात मालूम है। मुझ से एक बड़े ही विद्वान दक्षिण के पण्डित ने कही थी।"

दूसरे पण्डित अविश्वास की मुद्रा बनाकर बोले—"यह तो नई बात सुनी।"

पण्डित जी बोले—"इसी लिए पाञ्चजन्य नाम है कि उसमें पाँच रेखाएँ हैं।"

"आप पण्डित होकर ऐसी बात कहते हैं, बड़ा आश्चर्य है। पञ्च-जन्य दैत्य के पास वह शंख था इसलिए उसका नाम पाञ्चजन्य है। पाँच रेखाएँ तो कहीं लिखी देखी नहीं।"

"सो तो मैं भी जानता हूँ कि पञ्चजन्य दैत्य के नाम से उसका नाम पाञ्चजन्य हुआ। परन्तु उसके साथ यह भी है कि उसमें पांच रेखाएँ हैं।"

दूसरे पण्डित जी ने पाँचवीं रेखा पर नख प्रहार किया तो उसमें से एक टुकड़ा उखड़ आया। वह बोले—"अरे, यह रेखा तो नकली बनी हुई है!" यह कह कर उन्होंने उस रेखा को जोर से दबाया तो वह

पूरी की पूरी कुट से अलग हो गई। वह पण्डित बोले—"लीजिये, यह पाँचवीं रेखा। आप ठगे गये।"

पण्डित गदाधरप्रसाद का मुख पीला पड़ गया। घबराकर शंख के भीतर झाँकने लगे। अब जो देखा, तो चार ही रेखाएँ थीं। पण्डित जी का मुख उस समय देखने योग्य था।

दूसरे पण्डित बोले—"मैंने पाँच रेखा वाले भी देखे हैं। मामूली में पाँचवीं रेखा बड़ी महीन केवल चिह्न मात्र होती है, किसी-किसी में स्पष्ट होती है। परन्तु ऐसे शंख बहुत ही कम मिलते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।"

पण्डित गदाधर हाथ जोड़कर बोले—"अब मेरी इज्जत आपके हाथ है। आप इसका ज़िक्र किसी से न करना।"

"मुझे क्या मतलब है, पर अपने सेठ जी को क्या समझाओगे?"

"उन्हें तो समझा लूँगा; कोई युक्ति सोचूँगा।"

"तो बस उन्हें समझा लीजियेगा। मैं किसी से न कहूँगा; परन्तु आप ने बड़ा धोखा खाया।"

"क्या बताऊँ? उसकी बातों में आ गया।"

वह पण्डित जी चले गये।

दूसरे दिन पण्डित जी प्रातःकाल सूर्योदय होते ही लाला जी के पास पहुँचे। लालाजी का ज्वर उतर गया था। लाला जी बोले—"आज तो मेरी तबीयत ठीक है।"

"ठीक क्यों न होगी। वही तो मैं कहने आया हूँ। मैंने वह शंख ठाकुर जी के आगे रख दिया था। रात में मुझे स्वप्न हुआ कि कोई कह रहा है कि 'हम यह शंख स्वर्ग में लिये जाते हैं। ऐसी वस्तु कलि-काल में भूमण्डल पर नहीं रह सकती। तुम्हारे स्वामी का कल्याण होगा, उसने हमें यह वस्तु समर्पित की है। उसके सब पाप क्षय हो गये और अन्त समय उसे वैकुंठ मिलेगा।' यह कहकर वह अदृश्य हो गये।

क्या बताऊँ लालाजी सवेरे आकर जो मैंने ठाकुर जी के पट खोले तो शंख गायब ! मैं तो स्तम्भित रह गया । यह चमत्कार मैंने आज तक नहीं देखा । आपकी बदौलत यह भी देखा ।"

"लाला जी बोले तभी मेरी तबीयत इतनी जल्दी अच्छी हो गई । धन्य है भगवान ! आपने उनका दर्शन किया । उनका रूप कैसा था ?"

"दर्शन हम जैसे पापियों को कहाँ मिलते हैं लाला जी ! हमने तो केवल शब्द सुना । झूठ क्यों बोलें ।"

लाला जी बोले—"तो अब जापवाप की क्या ज़रूरत है । अब तो भगवान की ही कृपा हो गई ।" पण्डित जी का मुँह लटक गया । परन्तु ऊपर से बोले—"हाँ अब तो कोई आवश्यकता नहीं ।"

बहुत ही उदास चित्त से घर आये । पण्डिताइन से बोले—"राम-लाल तो नहीं आया ?"

पण्डिताइन बोली—"आता होगा, मैंने बतला दिया था ।"

पण्डित जी बोले—"अब ज़रूरत नहीं है ।"

"क्यों ?"

"क्या बतावें ।"

पण्डिताइन के ज़िद करने पर पण्डित जी ने सब वृत्तान्त कह दिया ।

पण्डिताइन बोली—"तुम ढपोरशंख ही रहे । मालिक का नुकसान कराया और अपना भी नुकसान किया ।"

पण्डित जी ने कोई उत्तर न दिया और दीर्घ निश्वास छोड़ कर रह गये ।

अभिन्न

श्यामाचरण ने प्रसन्नमुख होकर गिरिधारीलाल से कहा—"चलो, यह बहुत उत्तम बात हुई कि यूनीवर्सिटी में भी हमारा-तुम्हारा साथ रहेगा।"

गिरिधारीलाल हँस कर बोला—"इससे उत्तम और हो ही क्या सकता है? सच मानना, मैं तो ईश्वर से यही प्रार्थना कर रहा था कि यदि फ़ेल हों तो दोनों हों और पास हों तो दोनों हों।"

श्यामाचरण ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—"अच्छा, यदि तुम पास हो जाते और मैं फ़ेल हो जाता तो?"

"मुझे अपने पास होने का बहुत अफ़सोस होता।"—गिरिधारीलाल ने गम्भीर होकर उत्तर दिया।

श्यामाचरण ने अट्टहास करते हुए कहा—"पास होने पर अफ़सोस होना एक बड़ी विचित्र बात है।"

"निस्सन्देह, दूसरों के लिए तो यह विचित्र ही है, परन्तु हमारे-तुम्हारे लिए इसमें कोई विचित्रता नहीं। अच्छा यदि मैं फ़ेल हो जाता और तुम पास हो जाते तो क्या तुम्हें अपने पास होने पर प्रसन्नता होती?"—गिरिधारीलाल ने पूछा।

"कदापि नहीं! ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।"—श्यामाचरण ने उत्तर दिया।

इसी समय कमरे के एक द्वार से, जिस पर पर्दा पड़ा हुआ था, एक लड़की प्रविष्ट होकर कमरे के भीतर आई। लड़की की वयस चौदह-

पन्द्रह वर्ष के लगभग होगी। लड़की सुन्दर थी और उसकी मुखाकृति श्यामाचरण से कुछ-कुछ मिलती थी। कोई भी अनजान व्यक्ति उन्हें भाई-बहिन समझ सकता था।

लड़की को देखकर गिरिधारीलाल के गौरवर्ण गालों पर एक क्षण के लिए सुर्ख़ी दौड़ गई और साथ ही वह कुछ सिटपिटा सा गया। परन्तु शीघ्र ही वह सँभल कर गम्भीर हो गया।

लड़की ने अल्हड़पन के साथ श्यामाचरण से कहा—"भैया! अब मिठाई तो खिलवाओ! ऐसे ही मुफ़्त में पास हो जाना चाहते हो?"

श्यामाचरण हँसते हुए बोला—"मुफ़्त में क्यों? साल भर परिश्रम किया, सैकड़ो रुपया ख़र्च किया तब पास हुआ हूँ!"

"किया होगा, मैं क्या जानूँ। मैं तो तब जानूँ जब मेरा मुँह मीठा कराओ।"—इतना कहते हुए लड़की मन्दगति से श्यामाचरण के पास आई और एक कुर्सी पकड़ कर खड़ी हो गई।

श्यामाचरण ने उसी प्रकार हँसते हुए कहा—"अच्छा जा, दो पैसे के बताशे मँगा कर खा ले।"

"दो पैसे के बताशे! कहीं इस भरोसे न रहना, पूरे पाँच रुपये की मिठाई मँगवाऊँगी।"—लड़की ने इठलाते हुए कहा।

"पाँच रुपये की! बड़ी मिठाईख़ोर है। अच्छा चल यही सही। यदि पाँच रुपये की मिठाई मेरे सामने बैठ कर खा सके तो अभी मँगा दूँ।"

लड़की ने किञ्चित् लज्जित होकर कहा—"पाँच रुपये की मिठाई मैं अकेली ही थोड़े खा लूँगी।"

"तो फिर?"—श्यामाचरण ने पूछा।

"सब को खिलाऊँगी—तुम्हें भी खिलाऊँगी।"

"मुझे तो मिठाई अच्छी नहीं लगती।"

"आहा ! क्या ठीक है ! मिठाई के नाम शकर भी मिल जाय तो न छोड़ो।"

गिरिधारीलाल हँस पड़ा—श्यामाचरण भी हँसने लगा।

गिरिधारीलाल बोला—"अब तो उस्ताद चोरी पकड़ी गई। आप मिठाई के इतने शौक़ीन हैं, यह आज पता लगा।"

श्यामाचरण ने कहा—"तुमने भी इसकी बातों पर विश्वास कर लिया ! मैं मिठाई छूता तक नहीं।"

"हाँ छूते नहीं ; पर खा जाते हैं। चार-चार दिन की सूखी-सड़ी मिठाई तक नहीं बचती। जिस दिन मिठाई न हो, पेट ही न भरे।" लड़की ने हँसते हुए कहा।

"घर का भेदी बुरा होता है।"—गिरिधारीलाल बोला।

श्यामाचरण ने कहा—"अजी यह तो योंही बकती है। इसकी अलबत्ता यह हालत है कि मिठाई न मिले तो गुड़ तो ज़रूर ही होना चाहिए।"

इसी समय एक सज्जन, जो प्रौढ़ावस्था को पार करके बुढ़ापे की सीमा के अन्दर पहुँच रहे थे, कमरे के अन्दर आये। उन्हें देखते ही गिरिधारीलाल और श्यामाचरण उठकर खड़े होने लगे, परन्तु उन सज्जन ने दोनों को हाथ के इशारे से रोकते हुए कहा "बैठे रहो !" तत्पश्चात् मुस्कराते हुए बोले—"क्या बातचीत हो रही है ?"

लड़की बोली—"भैया पास हो गये, पर मिठाई नहीं खिलाते।"

श्यामाचरण ने कहा—"मिठाई मुझे अच्छी ही नहीं लगती। मैं तो वही चीज़ खिला सकता हूँ, जो स्वयम् मुझे अच्छी लगती है।"

"अच्छा यही सही, तुम्हें क्या अच्छा लगता है ? कहो !"—लड़की ने पूछा।

"मुझे ? मुझे तो नमक और काली मिर्च के साथ नींबू बड़ा अच्छा लगता है।"—श्यामाचरण ने उत्तर दिया।

लड़की ने लजा कर केवल "हूँ" कहा। लज्जा के कारण उसका मुख लाल हो गया। वृद्ध सज्जन अट्टहास करके लड़की से बोले—"यह तो श्यामू ने पते की कही। तुझे सचमुच ही नींबू अच्छा लगता है। जब देखो नींबू खाया करती है।"

श्यामाचरण बोला—"इसीलिए तो कहता हूँ कि मैं जितने नींबू यह कहे मँगा दूँ—बस दिन भर नींबू-नोन चाटा करे।"

लड़की बोली—"अच्छा यही सही, कुछ तो मँगाओ।"

"कैसी जल्दी राज़ी हो गई—अपनी पसन्द की चीज़ है न।"—श्यामाचरण बोला।

वृद्ध सज्जन बोले—"अच्छा जा, श्यामू की तरफ़ से मैं मिठाई खिला दूँगा। बस! अब तो ख़ुश है?"

लड़की बोली—"बाबू जी, आप क्यों खिलावें? मैं तो इन्हीं से लूँगी—यह बड़े कन्जूस हैं। कभी कुछ खरचना जानते ही नहीं।"

इतना कह कर लड़की वहाँ से चली गई।

वृद्ध सज्जन हँसते हुए कुर्सी पर बैठ गये और श्यामाचरण से बोले—"मालती को तुम्हारे पास होने की बड़ी ख़ुशी है। आज इसे पाँच रुपये दे देना—मिठाई मँगाकर अपनी सखी-सहेलियों में बाँट देगी।"

"सो तो मैं दे दूँगा! मैं केवल उसे चिढ़ा रहा था!"—श्यामाचरण ने कहा।

इसके पश्चात् वृद्ध सज्जन गम्भीर होकर बोले—"अच्छा अब यह निर्णय होना चाहिए कि कौन सा विश्वविद्यालय 'ज्वाइन' करना है।"

(२)

श्यामाचरण और गिरिधारीलाल दोनों समवयस्क तथा सजातीय हैं। लगातार चार वर्षों से सहपाठी होने के कारण दोनों में गाढ़ मैत्री

भी है। श्यामाचरण के पिता बाबू राधाचरण एक धनाढ्य व्यक्ति हैं। उनकी इच्छा अपनी कन्या, श्यामाचरण की छोटी बहिन का विवाह गिरिधारीलाल से करने की है, परन्तु उनकी इस इच्छा को उनके तथा उनकी अर्द्धाङ्गिनी के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। गिरिधारीलाल के पिता भी एक धनी आदमी हैं। उनकी भी यह अभिलाषा है कि गिरिधारीलाल का विवाह बाबू श्यामाचरण की कन्या से हो। गिरिधारीलाल अपने पिता की इस इच्छा को जानता है और उसी कारण वह श्यामाचरण की भगिनी मालती को मन ही मन अपनी भावी पत्नी समझता है। केवल इतना ही नहीं, वरन् उसके हृदय में मालती के प्रति प्रेम का अंकुर भी पूर्णतया प्रस्फुटित हो गया है, परन्तु इस अंकुर को वह अपने हृदय में बलपूर्वक छिपाये हुए था।

दोनों का विश्वविद्यालय में प्रविष्ट होना निश्चित हुआ। एक दिन शुभ मुहूर्त में दोनों ने प्रस्थान किया।

होस्टल के एक ही कमरे में दोनों ने डेरा जमाया और दत्तचित्त हो कर शिक्षा उपार्जन करने में लग गये।

दोनों सन्ध्या समय वायुसेवन के लिए साथ निकलते थे और साथ ही लौटते थे। अन्य लड़कों से ये दोनों बिल्कुल अलग-अलग रहते थे। इस कारण लड़के इन दोनों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की भली-बुरी बातें कहते थे; परन्तु इन दोनों को इसकी कुछ भी परवाह न थी। एक दिन वायुसेवन के लिए तैयार होकर श्यामाचरण ने गिरिधारीलाल से कहा—"उठो, तैयार हो जाओ, क्या अहदी जैसे पड़े हो।"

गिरिधारीलाल ने कहा—"भाई, आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है; बदन टूट रहा है, उठने को जी नहीं चाहता। आज तुम अकेले घूम आओ।"

श्यामाचरण ने आगे बढ़कर गिरिधारी की कलाई अपने हाथ में

ले ली और नाड़ी देखने के पश्चात् कहा—"कुछ ख़फ़ीफ़ सी हरारत है। अच्छी बात है, तुम नहीं जाते तो मैं भी न जाऊँगा।"

गिरिधारीलाल ने कहा—"तुम क्यों नहीं जाते। तुम हो आओ।"

"अकेला क्या जाऊँ!"

"हज क्या है, हो आओ।"

"अकेले जाने की इच्छा नहीं होती।"

गिरिधारीलाल ने आग्रहपूर्वक कहा—"नहीं, ज़रूर जाओ। अपनी इच्छा से नहीं तो मेरे कहने से जाओ। आज तुम्हें अकेले घूमते देखकर सबको आश्चर्य होगा, क्योंकि हम लोगों को सब "इनसेपेरेबुल" (पृथक् न होनेवाले) कहते हैं। आज उनकी यह धारणा ग़लत साबित कर दो।"

श्यामाचरण हँस पड़े।

गिरिधारीलाल ने पुनः कहा—"बड़ा मज़ा आवेगा। जो कोई तुमसे पूछे कि आज अकेले क्यों घूम रहे हो तो तुरन्त उत्तर देना कि—"बिकाज़ वी आर नाट इनसेपेरेबुल" (क्योंकि हम पृथक् न होने वाले नहीं हैं) तुम्हारी क़सम बड़े झेंपेंगे।"

श्यामाचरण उसी प्रकार हँसते हुए बोला—"अजी हटाओ भी इन बातों में क्या धरा है।"

"धरा तो कुछ भी नहीं है, केवल थोड़ा आनन्द आ जायगा।"

हठात् श्यामाचरण गम्भीर होकर कुछ सोचने लगा। सोचते-सोचते उसके मुख पर भावुकतापूर्ण मन्द मुस्कान प्रस्फुटित हुई।

गिरिधारीलाल ने पूछा—"क्या मुस्कराये?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही विचार आ गया।"

"क्या विचार आया, मैं भी तो सुनूँ।"

"कोई ख़ास बात नहीं।"

"तब भी कुछ मालूम तो हो।"

"मैंने सोचा कि जब लोग हमें तुम्हें इनसेपेरेबुल कहते हैं तो, हम को भी वैसा ही बन जाना चाहिए।"

"क्यों?"—गिरिधारीलाल ने प्रश्न किया।

"क्योंकि हम लोग वास्तव में वैसे हो गये हैं। क्या तुम समझते हो कि अब हमें-तुम्हें कोई पृथक् भी कर सकता है?"

"नहीं, मैं तो नहीं सोचता।"

"तो बस फिर! जब हमको कोई पृथक् नहीं कर सकता तो हमको वैसा ही बन जाना चाहिए। लोगों के इस विचार को कि हम दोनों 'इनसेपेरेबुल' हैं, निर्मूल बनाने की अपेक्षा हम दोनों को उसे अधिक दृढ़ बनाना चाहिए। क्योंकि कभी-कभी मैं यह महसूस करता हूँ कि लोग हमें इनसेपेरेबुल व्यंग से कहते हैं।"

"क्यों?"—गिरिधारीलाल ने भोलेपन के साथ पूछा।

"सम्भव है, उनका यह ख़याल हो कि हम लोग बाहर से जितने इनसेपेरेबुल दिखाई पड़ते हैं, वैसे कदाचित् हृदय से नहीं।"

गिरिधारीलाल ने सिर हिलाते हुए कहा—"तुम्हारा यह विचार ठीक है। क्योंकि दो-एक बार मैंने दो-एक विद्यार्थियों को कहते हुए सुना है और कदाचित् उन्होंने मुझे सुनाने के लिए ही कहा हो कि 'अधिक मिठाई में कीड़े पड़ते हैं।"

"देखा! वही बात आई न? मैं तो पहले ही समझता था। कुछ लोग तो नित्य उठकर इस बात की प्रतीक्षा करते होंगे कि आज दोनों में झगड़ा हो जायगा।"

गिरिधारीलाल हँस पड़ा और बोला—"बेवक़ूफ़! वे क्या जानें कि हम दोनों को संसार की कोई शक्ति अलग नहीं कर सकती।"

श्यामाचरण ने किञ्चित् गम्भीर होकर कहा—"नहीं, ऐसा न कहो! एक शक्ति ऐसी है कि वह हम दोनों को अलग कर सकती है।"

"वह क्या ?"—गिरिधारीलाल ने कुछ सशङ्कित होकर पूछा ।

"मौत ।"—श्यामाचरण ने कहा ।

कमरे में "मौत" शब्द गूँज गया। गिरिधारीलाल का हृदय धड़कने लगा। दोनों कुछ समय तक सन्नाटे में रहे। ऐसा जान पड़ता था कि दोनों ने इस बात को स्वीकार किया। सहसा गिरिधारीलाल का मुख तमतमा उठा। उसने कहा—"हम दोनों को पृथक् करने में मौत को भी कठिनता पड़ेगी।"

श्यामाचरण हँस पड़े और बोले—"ठीक कहते हो !"

(३)

एक दिन दोनों सन्ध्या-समय वायु-सेवन करके लौट रहे थे। रास्ते में इन्हें कालेज की तीन छात्राएँ मिलीं। इनको देखकर एक ने धीमे स्वर में कहा—"दि इनसेपेरेबुल पेर" और तत्पश्चात् तीनों ने अट्टहास किया।

दूसरी बोली—"दोनों भाई-भाई की तरह साथ रहते हैं।"

तीसरी बोली—"भाई-भाई की तरह या पति-पत्नी की तरह ?"

इस पर पुनः तीनों ने अट्टहास किया। इतनी देर में वे दूर निकल गईं। श्यामाचरण ने गिरिधारीलाल से कहा—"सुना ?"

"हाँ सुना! अब तो लड़कियाँ भी हम लोगों पर फब्तियाँ कसने लगीं।"

श्यामाचरण म्लानमुख हो गये। उन्होंने कहा—"संसार कितना क्षुद्र है। दो आदमियों के प्रेम तथा स्नेह को भी सीधी दृष्टि से नहीं देख सकता।"

गिरिधारीलाल ने कहा—"कैसे देख सकता है ? धन, विद्या, बल, प्रेम इत्यादि ऐसी न्यामतें हैं, जो बड़ी कठिनता से प्राप्त होती हैं; और जिसे यह प्राप्त होती है, संसार उनसे ईर्ष्या करता है। लोग नहीं चाहते कि ये चीज़ें दूसरों को प्राप्त हों और वे इनसे वञ्चित रहें। जिन्हें ये प्राप्त नहीं वे दूसरों का मज़ाक़ उड़ाकर अपने मन को सन्तोष देते हैं।"

इसी प्रकार की बातें करते हुए दोनों लौटे। गिरिधारीलाल तो पूर्ववत् रहे, परन्तु श्यामाचरण का चित्त उदास हो गया।

सोते समय गिरिधारीलाल ने श्यामाचरण से कहा—"आज तुम कुछ उदास हो गये।"

श्यामाचरण—"नहीं, उदास तो क्या हूँ।"

"हो कैसे नहीं, अवश्य हो। जान पड़ता है, उन चुड़ैलों की बातों ने तुम्हारे हृदय को चोट पहुँचाई है।"

"हाँ शाम से मेरी धारणा कुछ ऐसी हो गई है कि संसार हमें तुम्हें 'इनसेपेरेबुल' नहीं रहने देगा।"

गिरिधारीलाल—"बड़े भावुक हो! ज़रा सी बात में विचलित हो गये।"

श्यामाचरण—"ऐसे ही विचार होता है, विचलित होने की तो कोई बात नहीं।"

गिरिधारीलाल—"यदि कुत्तों के भूँकने की परवाह करोगे तो रास्ता चलना कठिन हो जायगा।"

"श्यामाचरण—परवाह करना तो व्यर्थ ही है।"

"तो फिर उदास भी न होना चाहिए?"

"मेरी तबीयत आज कुछ वैसे भी ख़राब है। न जाने कैसा-कैसा मालूम हो रहा है।"

"क्या मालूम हो रहा है?"

"तबीयत कुछ उचाट सी हो रही है।"

"घर की याद आती है क्या?"

"क्या बताऊँ किसकी याद आती है। याद आती भी है और नहीं भी।"

"अच्छा सो जाओ! सबेरे तबीयत ठीक हो जायगी।"

इतना कह कर गिरिधारीलाल ने करवट बदल ली और सोने का

उद्योग करने लगा।

* * *

रात के दो बजे कुछ खटका होने से गिरिधारीलाल की आँख खुल गई। उसने देखा कि कमरे की बत्ती जल रही है और श्यामाचरण चारपाई पर पड़े कराह रहे हैं। गिरिधारीलाल उठकर बैठ गया और बोला—"श्यामाचरण! क्या बात है?"

"श्यामाचरण ने उत्तर दिया—दो दस्त हुए हैं और तीन-चार क़ै हो चुकी हैं। पेट में सुइयाँ सी चुभ रही हैं, पैरों में ऐंठन है।"

गिरिधारीलाल घबराकर चारपाई से यह कहते हुए उतरा—"तुमने मुझे जगाया क्यों नहीं?"

पास जाकर गिरिधारीलाल ने श्यामाचरण का मुँह देखा तो उसका कलेजा धक् से हुआ। श्यामाचरण का चेहरा इतना उत्तर गया था, मानों बहुत दिनों से बीमार हैं। चेहरे पर स्याही आगई थी और आँखें गड्ढे में चली गई थीं।

गिरिधारीलाल ने कमरे के बाहर निकल कर अन्य विद्यार्थियों को जगाया।

इसी समय श्यामाचरण पुनः पाख़ाने गये और इस बार इतने अशक्त हो गये कि अपने आप उठ कर नहीं आ सके। दो विद्यार्थी सहारा देकर उन्हें उनकी चारपाई तक लाये।

कुछ ही क्षणों में होस्टल के उस समस्त भाग में यह समाचार बिजली की तरह फैल गया। कुछ लड़कों ने दौड़कर होस्टल के सुपरिन्टेन्डेन्ट को सूचना दी। उन्होंने उसी समय डॉक्टर को बुलवाया। डॉक्टर ने आकर श्यामाचरण की परीक्षा की। तत्पश्चात् सुपरिन्टेन्डेन्ट से अलग जाकर कहा—इसे बड़ा सख़्त कॉलरा है। मेरे विचार से तो प्रातःकाल होते-होते समाप्त हो जायगा। बचने की कोई आशा नहीं। फिर भी प्रयत्न करता हूँ।

गिरिधारीलाल ने भी डॉक्टर की बात सुनी। उसकी आँखों तले

अँधेरा छा गया। वह उसी समय चीत्कार करके रोता हुआ श्यामाचरण के कमरे की ओर दौड़ा; परन्तु दो-तीन विद्यार्थियों ने उसे पकड़ लिया। डॉक्टर की आज्ञा से वह एक दूसरे कमरे में बन्द कर दिया गया।

उपचार होने लगा; परन्तु कोई लाभ न हुआ। प्रातःकाल होते-होते श्यामाचरण मरणासन्न हो गया। मृत्यु के दस मिनिट पहले उसने कहा—"गिरिधारीलाल कहाँ है!"

गिरिधारीलाल बुलाया गया। वह इस समय पागल सा हो रहा था। उसको देख कर श्यामाचरण ने मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए कहा—"गिरिधारी, अन्त में हम पृथक् हो ही गये—और सदैव के लिए।"

गिरिधारीलाला रुँधे हुए कण्ठ से कठिनतापूर्वक बोला– "नहीं भाई, मुझे विश्वास नहीं होता।" यह कह कर गिरिधारीलाल ने रोना आरम्भ किया।

विद्यार्थियों ने उसे वहाँ से पुनः हटाया।

बाहर लाकर लड़कों ने उसे समझाना आरम्भ किया। कुछ क्षणों पश्चात् कमरे के अन्दर से एक विद्यार्थी यह कहता हुआ बाहर निकला—"सब समाप्त हो गया! आह! क्या जोड़ी थी—आज बिछुड़ गई! भगवान् जाने किसकी नज़र खा गई!"

गिरिधारीलाल ने यह बात सुनी और हाय करके बेहोश हो गया।

(४)

गिरिधारीलाल विश्वविद्यालय छोड़ कर घर चला आया। दीपावली के पश्चात् भैयादूज का दिन आया। श्यामाचरण की मृत्यु के पश्चात् यह पहली भैयादूज थी। गिरिधारीलाल अपने कमरे में बैठा हुआ एक पुस्तक के पृष्ठ उलट रहा था। इसी समय कमरे के सामने से एक स्त्री यह कहती हुई निकली—"बेचारी बैठी रो रही है—किसके टीका करे,

भाई तो चला गया।"

गिरिधारीलाल चौंक पड़ा। "उसने पुकारा—महरी!"

स्त्री ठिठुक गई। गिरधारीलाल ने पूछा—"कौन बैठी रो रही है?"

महरी बोली—"मालती बीबी के यहाँ गई थी। बेचारी बैठी रो रही थी। आज भैयादूज है। किसके टीका करे। एक भाई था, सो भी नहीं रहा। हमें तो देख के बड़ा दुख लगा।"

इतना कह कर महरी चली गई। गिरिधारीलाल कुछ क्षणों तक मूर्तिवत् बैठा रहा। तत्पश्चात् अकस्मात् उठ खड़ा हुआ। उसने शीघ्रतापूर्वक कपड़े पहने और चल दिया।

एक घण्टे पश्चात् वह लौट कर आया। उसके माथे पर तिलक लगा हुआ था। पहले पिता से मुडभेड़ हुई। उन्होंने तिलक देखकर पूछा—"यह तिलक कहाँ से लगवा आया?"

गिरिधारीलाल ने कहा—"मालती ने लगाया है। आज भैयादूज है।"

गिरिधारीलाल के पिता सन्न हो गये। कुछ क्षणों तक सन्नाटे में रहने के पश्चात् उन्होंने कहा—"तूने बड़ा ग़ज़ब किया। बिना मुझसे पूछे चला गया। तुझे क्या यह मालूम नहीं कि मालती से तेरा विवाह होने वाला है।"

गिरिधारीलाल ने विषादपूर्ण मन्द-मुस्कान के साथ कहा—"हाँ, मालूम था! पर मैंने उसका पति बनने की अपेक्षा भाई बनना अधिक आवश्यक समझा। पति तो उसे मुझसे अधिक अच्छा मिल सकता है। पर ऐसा भाई कहाँ मिलेगा, जो उसे उसी प्रकार समझे जैसे श्यामाचरण समझते थे। श्यामाचरण के अभाव की पूर्ति केवल मैं ही कर सकता हूँ; क्योंकि यद्यपि शरीर से हम दोनों पृथक् हो गये हैं; परन्तु श्यामाचरण की आत्मा अब भी मेरी आत्मा के साथ है।"

यह सुन कर पिता निरुत्तर हो गये।

प्रकृति

प्रातःकाल का समय था। ज़नाना अस्पताल के लेडी डाक्टरों की ड्यूटी बदली जा रही थी। रात की ड्यूटी पर डाक्टर सुभद्रा भटनागर तथा सोमलता कक्कड़ थीं। दोनों की वयस चौबीस-पचीस वर्ष के लगभग थी। दोनों साधारणतया सुन्दर थीं। सुभद्रा का वर्ण गेहुँआ और सोमलता का वर्ण गोरा था। अतएव सुभद्रा की अपेक्षा सोमलता कुछ अधिक सुन्दर जँचती थी।

दिन की ड्यूटी पर जो आई थीं, उनमें एक मुसलमान ज़ोहरा अन्सारी और दूसरी हिन्दुस्तानी-ईसाई मारगेरेट ब्लाइथ थी।

सोमलता मारगेरेट से अँग्रेज़ी में बोली—"प्राइवेट वार्ड रूम नं० ७ के बच्चा हो गया है।"

"सब ठीक हो गया?" मारगेरेट ने पूछा।

"हाँ, परन्तु मरते-मरते बची। उफ़! कितना कष्ट हुआ है उसे! उसे शांत करने के लिए मुझे 'मारफ़िया' इंजेक्ट करना पड़ा। भगवान् बचावे!"

"पहला बच्चा है शायद?"

"हाँ!"

"तभी। बाज़ औरतों को पहला बच्चा होने में बड़ा कष्ट होता है। ख़ैर! और कुछ?"

"बस! मुझे तो रात भर उसी रूम में रहना पड़ा।" इतना कहकर सोमलता चल दी।

"मैं भी आ रही हूँ।" सुभद्रा ने सोमलता की ओर लपकते हुए कहा।

सोमलता ठिठक गई।

सोमलता तथा सुभद्रा दोनों एक ही क्वार्टर में रहती थीं। अस्पताल के कम्पाउण्ड में ही इनका क्वार्टर था। सुभद्रा के आजाने पर दोनों क्वार्टर की ओर चलीं, दोनों मौन थीं। सोमलता में विचारमग्नता थी—सुभद्रा थकी हुई-सी जान पड़ती थी। क्वार्टर पहुँच कर दोनों अपने-अपने कमरे में चली गईं। नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर दोनों एक बीच के कमरे में, जो बैठने-उठने के लिए था और दोनों के साझे में था, आ बैठीं। मेज़ पर एक अँग्रेज़ी का अख़बार रक्खा हुआ था। दोनों ने उसके पृष्ठ आपस में बाँट लिये और पढ़ना आरम्भ किया। इसी समय एक प्रौढ़ा स्त्री ने, जो दोनों का भोजन बनाती थी, दो प्याले चाय और दो तश्तरी टोस्ट मेज़ पर रख दिये। दोनो अख़बार पढ़ते हुये चाय पीने लगीं।

बीस मिनट के पश्चात् सुभद्रा ने अख़बार रखकर जमुहाई लेते हुए अँगड़ाई ली। अँगड़ाई लेकर बोली—"आज बड़ी थकावट है, नींद लग रही है।"

"नींद तो मुझे भी लगी है।" सोमलता ने भी जमुहाई लेते हुए कहा।

"रात में सोने का ज़रा भी अवसर नहीं मिला।" सुभद्रा बोली।

"अच्छा! यही दशा मेरी भी रही। ओफ़ ओह! मैं तुमसे क्या कहूँ सुभद्रा, बच्चा होने में इतना कष्ट मैंने पहले कभी नहीं देखा।"

"होता है। जिन स्त्रियों का शरीर स्वाभाविक रूप से पूर्ण विकास पर नहीं पहुँच पाता, उनको कष्ट अधिक होता है।"

"उसकी दशा देखकर तो विवाहित जीवन से भय लगता है।"

"तो सबको इतना कष्ट थोड़े ही होता है! बहुतेरियों को तो ज़रा

भी कष्ट नहीं होता।"

"हाँ, हाँ, यह ठीक है, परन्तु सम्भावना तो रहती ही है।" सोमलता ने मुँह बनाकर कहा।

"तो इससे तुम्हारा तात्पर्य क्या है? क्या तुम्हारा विचार विवाह करने का है?"

सोमलता कुछ सिटपिटा कर बोली—"नहीं! मैंने बात कही!"

सुभद्रा मुस्कराई। सोमलता को सुभद्रा का मुस्कराना बुरा लगा। वह बोली—"इसमें मुस्कराने की क्या बात है?"

"मुस्कराने की यह बात है कि तुम्हारे मस्तिष्क के जाग्रत अथवा अजाग्रत भाग में विवाह करने का विचार विद्यमान है।" सुभद्रा ने उसी प्रकार मुस्कराते हुए कहा।

"यदि हो भी, तो कोई बुरी बात है क्या?" सोमलता ने किंचित् रोष के साथ पूछा।

"बिल्कुल नहीं। यह मैं कब कहती हूँ? मैं तो केवल तुम्हारा विचार जानना चाहती हूँ।"

सोमलता कुछ क्षण मौन रह कर बोली—"हाँ सुभद्रा, मेरा विचार था, परन्तु कल रात के अनुभव ने उस विचार को बहुत कमज़ोर कर दिया है।"

"कष्ट देखकर इतनी भयभीत हो गई—और डाक्टर होकर? आश्चर्य है!"

"दूसरों का कष्ट देखने और स्वयं कष्ट उठाने में अन्तर है।"

"हाँ! हाँ! मैं उस अन्तर को मानती हूँ, परन्तु इतना नहीं कि मुझ पर उसका आतंक छा जाय।"

"अच्छा, क्या तुम्हारे हृदय में विवाह करने का विचार कभी नहीं उठता?"

"नहीं। परन्तु उसका कारण विवाह का आतंक नहीं है। मेरा सिद्धांत यह है कि जब बाज़ार में दूध मिल सकता है, तब गाय पालने का झंझट क्यों किया जाय !"

"बात तो ठीक कहती हो, परन्तु..."

"हाँ, हाँ, कहो।"

"बाज़ार का दूध केवल दूध की आवश्यकता को पूरा कर सकता है।"

"इससे अधिक तुम और क्या चाहती हो ?"

"क्या चाहती हूँ—यह ठीक नहीं बता सकती। परन्तु कभी-कभी जीवन बड़ा नीरस और सूना मालूम होता है।"

"मेलेङ्कोलिया (उदास रहने का रोग) तो नहीं हो रहा है ?"

"नहीं, मेलेङ्कोलिया नहीं है।"

"तब क्या कारण है ?"

"यह मैं स्वयं नहीं बता सकती।"

"अपने हृदय की बात तुम स्वयं नहीं जानतीं, यह आश्चर्य की बात है !"

"तुम्हें क्या कभी जीवन में नीरसता तथा सूनेपन का अनुभव नहीं होता ?"

"कभी नहीं। इतने आदमियों के बीच में रहते हुए, ऐसा महत्वपूर्ण कार्य, जिसका मुख्य अङ्ग मानव-जाति की सेवा और पीड़ा-निवारण है, करते हुए और तुम्हारी जैसी संगिनी का सहवास प्राप्त होते हुए नीरसता तथा सूनेपन का क्या काम ? मुझे तो समय व्यतीत होता जान ही नहीं पड़ता।"

"मुझे तुम पर ईर्ष्या होती है सुभद्रा ! यदि मैं भी जीवन को तुम्हारे ही दृष्टिकोण से देख सकती तो, परन्तु..." सोमलता ने वाक्य-समाप्ति

पर एक लम्बी साँस ली।

"इस 'परन्तु' को निकाल फेंको, बस, सब काम ठीक हो जायगा।"

"मैं प्रयत्न तो बहुत करती हूँ, परन्तु..."

"फिर वही परन्तु ! आख़िर तुम चाहती क्या हो ? खुल कर कहती क्यों नहीं ?"

"मैं क्या चाहती हूँ ? मैं चाहती हूँ—एक ऐसा जीवन-सङ्गी, जिस पर मेरा पूरा अधिकार हो, जिसे मैं अपना—केवल अपना—समझ सकूँ। जो मेरी प्रसन्नता में प्रसन्न और मेरे दुःख में दुखी हो। जब मैं हँसूँ, तो वह भी हँसे; जब मैं रोऊँ, तो प्रेम-पूर्ण बातें करते हुए मेरे आँसू पोंछे। जब मैं रात को भयानक स्वप्न देख कर चौंक पड़ूँ तो वह..."

इतना कह कर सोमलता मौन हो गई, और दीवार को इस प्रकार ताकने लगी, मानो वह अपने कल्पित जीवन-संगी को सामने खड़ा देख रही है।

सुभद्रा खिलखिला कर हँस पड़ी। हँसते हुए बोली—"इतनी भूमिका बाँधने की क्या आवश्यकता थी ? सीधी बात क्यों नहीं कहतीं कि तुम्हें पति की आवश्यकता है। परन्तु जब पति होगा, तो बच्चे भी होंगे, और जब बच्चे होंगे, तो प्रसव-पीड़ा भी होगी।"

"उफ़ ! मुझे उसका स्मरण मत दिलाओ।"

सोमलता उठ कर अपने कमरे में चली गई।

(२)

उपर्युक्त बात को पन्द्रह दिन व्यतीत हो गये। उस दिन के पश्चात् फिर सोमलता तथा सुभद्रा में उस विषय पर कोई वार्तालाप नहीं हुआ। सुभद्रा ने एक-दो बार छेड़ा भी परन्तु सोमलता ने कहा—"उस दिन न जाने क्या हो गया था, अब वह बात नहीं रही।"

सन्ध्या के पाँच बजने वाले थे। सोमलता प्राइवेट वार्ड के एक कमरे में एक रोगिणी की परीक्षा कर रही थी। रोगिणी के पलंग के पास सोमलता के अतिरिक्त एक प्रौढ़ा तथा अस्पताल की एक नर्स खड़ी थी।

परीक्षा करने के बाद सोमलता प्रौढ़ा से बोली—"कोई चिन्ता की बात नहीं है।"

"बेहोशी-सी क्यों है ?"

"बेहोशी तो दवा के कारण है। बेहोशी की दवा दी गई है, जिससे दर्द की तकलीफ़ न मालूम हो।"

"और कोई खटका तो नहीं है ?"

"बिल्कुल नहीं।"

"भगवान् तुम्हें सुखी रक्खें ! तुम्हारा ही सहारा है। जो इसे कुछ हो गया, तो मै लड़के को क्या मुँह दिखाऊँगी !"

"आपका लड़का यहाँ नहीं है क्या ?"

"नहीं, बाहर है। तार दे दिया था। न जाने अभी तक क्यों नहीं आया ! कल तार दिया था।"

इसी समय रोगिणी सिर हिलाकर कराही। सोमलता नर्स से बोली—"सिस्टर ! गीले कपड़े से इनका माथा और मुँह पोंछो।"

नर्स तुरन्त अपना काम करने लगी।

इसी समय कमरे के द्वार पर एक कोट-पेंट-धारी युवक आकर खड़ा हो गया, और अँग्रेज़ी में सोमलता से बोला—"क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?"

सोमलता के कुछ उत्तर देने के पूर्व ही प्रौढ़ा प्रसन्नता-सूचक उच्च स्वर में बोली—"बेटा ! तुम आ गये ! बड़ी राह दिखाई—आ जाओ।"

युवक सोमलता की ओर देखता हुआ कुछ संकोच-सहित भीतर

आया। सोमलता बड़े ध्यान से युवक की ओर देख रही थीं। युवक की आयु छब्बीस-सत्ताईस वर्ष की होगी। शरीर दोहरा तथा गठा हुआ, क़द लम्बा, वर्ण गौर और मुखाकृति मनोहर, बटरफ़्लाई मूँछ।

युवक अन्दर आकर रोगिणी के पलंग के पायताने खड़ा हो गया, और अपने हैट को हाथों में उलटते-पलटते हुए बोला—"क्या हाल है?"

सोमलता युवक को देखने में इतनी मग्न थी कि वह युवक की बात सुन कर चौंक-सी पड़ी। उसने सँभल कर अँग्रेज़ी में उत्तर दिया—"अब ख़तरे के बाहर है।"

युवक अँग्रेज़ी में बोला—"ईश्वर को धन्यवाद! और—और बच्चा?"

"वह भी ठीक है—लड़का है।"

युवक ने इस पर कुछ नहीं कहा, परन्तु उसके मुख पर हर्ष की एक क्षीण रेखा उत्पन्न होकर गम्भीरता में लय हो गई।

सोमलता चुपचाप कमरे के बाहर हो गई। कमरे के द्वार से उसने एक बार पुनः गर्दन घुमाकर युवक को देखा।

"बड़ी देर लगाई बेटा!"

"हाँ, देर लग गई।"

"यहाँ का पता मिल गया? कोई साथ आया था क्या?"

"नहीं, बाबू जी ने कमरे का नम्बर बता दिया था।"

यह कहते हुये युवक ने कनखियों से रोगिणी की ओर देखा।

"बड़ा कष्ट पाया बहू ने! नया जन्म हुआ है। इसीलिये मैंने घबरा-कर तुझे तार दिलवा दिया।"

"ठीक है!"

"कितने दिन की छुट्टी मिली?"

"एक सप्ताह की।"

"अच्छा, तो तू ज़रा देर बैठ, मैं ज़रा ग़ुसलख़ाने हो आऊँ।"

"हाँ ! हाँ !"

माता एक दूसरे द्वार से निकल गई। उसके जाते ही युवक ने रोगिणी के सिर पर हाथ रखकर पुकारा—"सरोजिनी !"

रोगिणी ने सिर घुमाकर 'ऊँ' कहा, परन्तु आँखें नहीं खोलीं। युवक बोला—"अभी होश नहीं है।"

नर्स ने उत्तर दिया—"मार्फ़िया दिया गया है।"

"ओ !" कहकर युवक पीछे हट गया। कुछ देर तक मौन खड़े रह कर वह रोगिणी को देखता रहा। सहसा वह बोला—"हाँ, बच्चा कहाँ है ?"

"बच्चा अभी अलग रक्खा गया है, कल इनके पास आ जायगा।"

"क्या मैं उसे देख सकता हूँ ?"

"डाक्टर कक्कड़ से कहिये।"

"डाक्टर कक्कड़ कौन ?"

"वही, जो अभी यहाँ से गई हैं।"

"अच्छा ! लेकिन वे तो चली गईं।"

"मैं अभी बुला दूँगी।"

"धन्यवाद !"

नर्स ने गीला कपड़ा मेज़ पर रख दिया, और खटपट करती हुई कमरे के बाहर निकल गई। युवक आगे बढ़ कर रोगिणी के मुख पर हाथ फेरने लगा।

कुछ क्षण पश्चात् युवक की माता तौलिये से मुँह पोंछती हुई आई। युवक तुरंत पीछे हट गया। अन्दर आकर माता ने कहा—"अब ज़रा जी हल्का हुआ। नर्स चली गई ?"

"आती है।"

इसी समय नर्स आ गई और बोली—"आ रही हैं।"

"कै बजे की गाड़ी में आया?" माता ने पूछा।

"अभी चला ही आ रहा हूँ। घर पर असबाब रखकर इधर चला आया।"

"तो अब तू जा—कपड़े-वपड़े उतार जाकर। मैं तो रात में यहीं रहती हूँ।"

"अकेली?"

"नहीं, अभी थोड़ी ही देर में महरी आ जायगी—वह मेरे पास रहेगी।"

"तब ठीक है।"

इसी समय सोमलता आ गई, और आते ही उसने पूछा—"क्या आप बच्चा देखना चाहते हैं?"

"हाँ, यदि कोई हर्ज न हो, तो।"

"अच्छा तो आइये।"

"अच्छा तो माँ, मैं अब जाता हूँ।"

"हाँ जाओ।"

युवक सोमलता के पीछे-पीछे चला।

कुछ ही दूर चल कर सोमलता एक बड़े कमरे में प्रविष्ट हुई। इस कमरे में बच्चों के छोटे-छोटे अनेक पलंग एक कतार में बिछे हुये थे। इनमें से कुछ ख़ाली थे और शेष चार पलंगों में बच्चे थे। प्रत्येक पलंग पर एक-एक कार्ड लगा हुआ था। सोमलता एक पलंग के पास जाकर खड़ी हो गई। पलंग पर एक बच्चा सो रहा था। उसका सब शरीर ढँका हुआ था, केवल मुँह खुला था। युवक कुछ क्षण ध्यान-पूर्वक बच्चे को देखता रहा। उसके मुख पर प्रसन्नता तथा सन्तोष के चिह्न प्रस्फुटित हो उठे। सोमलता बोली—"बच्चा सुन्दर है!"

युवक ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"कल यह अपनी माँ के पास पहुँचा दिया जायगा।"

इसी समय एक दूसरा बच्चा रोने लगा। वहाँ दो नर्सें उपस्थित थीं, उनमें से एक ने दौड़ कर बच्चे की ओर ध्यान दिया।

सोमलता बोली—"अच्छा तो चलें।"

"हाँ! चलिये!"

बाहर आकर युवक बोला—"धन्यवाद! आपने बड़ी कृपा की!"

सोमलता ने मुस्करा कर कहा—"बिल्कुल नहीं, यह हमारा कर्त्तव्य है।"

"अच्छा! गुडनाइट!" युवक ने कहा।

"गुडनाइट।"

युवक चल दिया। सोमलता युवक को जाते हुये देखती रही और उसके आँखों से ओझल होने पर दूसरी ओर चल दी।

(३)

ऊपर जिस युवक का वर्णन किया गया है, वह युवक जाति का खत्री है। नाम ब्रजनारायण मेहरोत्रा है। इसके पिता सरकारी पेन्शनर हैं। शहर में जायदाद भी है, जिससे लगभग डेढ़ सौ रुपये मासिक की आमदनी है। ब्रजनारायण अवध के एक राजा के प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। वे एम० ए० और एल० एल० बी० पास हैं।

उस दिन के बाद ब्रजनारायण प्रतिदिन दोनों समय अस्पताल जाने लगे। क्रमशः सोमलता से इनका घनिष्ठ परिचय हो गया। एक दिन सुभद्रा ने सोमलता से कहा—"आजकल उससे बड़ी घनिष्ठता है, क्या नाम है उसका...ब्रजनारायण? हाँ, ब्रजनारायण!"

सोमलता भृकुटी चढ़ाकर बोली—"घनिष्ठता से तुम्हारा क्या मतलब

है ?"

सुभद्रा सोमलता की बदली हुई त्योरियाँ देखकर बोली—"घनिष्ठता से मेरा कोई और मतलब नहीं है। मेरा मतलब यही है कि ख़ूब मेल-जोल है।"

'तो इसमें हर्ज क्या है? पढ़ा-लिखा आदमी है—सज्जन है, शिष्ट है ! ऐसे आदमी से मेल-जोल न बढ़ाया जाय, तो क्या गँवारों से बढ़ाया जाय?"

"ओहो ! तुम तो बात का बतंगड़ बनाने लगीं। मेरा यह मतलब कदापि नहीं था कि तुम उससे प्रेम करने लगी हो।"

"प्रेम कर भी कैसे सकती हूँ ? वह विवाहित है, और विवाहित पुरुष से प्रेम करने के भयानक परिणाम को मैं भली भाँति समझती हूँ।"

"अच्छा यदि अविवाहित होता, तो शायद प्रेम करने भी लगतीं ?"

"कितनी अशिष्ट हो तुम सुभद्रा !" सोमलता ने रुष्ट होकर कहा।

"ओहो ! आजकल तो तुम शिष्टता की मूर्ति बन गई हो ! तुम शायद यह भूल गई हो कि हमारी तुम्हारी मित्रता है—केवल मित्रता ही नहीं, साहचर्य भी है। ऐसी दशा में हमारे-तुम्हारे मध्य शिष्टता-अशिष्टता का प्रश्न ही नहीं उठता।"

"वह ठीक है, परन्तु फिर भी इतना ध्यान तो रखना ही चाहिए कि भावनाओं को ठेस न पहुँचे।"

"तुम्हारी भावनाओं को मैं ठेस पहुँचाऊँगी ? यह तो तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो सोमलता ! मैं तुम से कितना स्नेह करती हूँ—यह शायद तुम नहीं समझ सकीं ! यदि आवश्यकता पड़े, तो मैं तुम्हारे लिए बड़े-से-बड़ा त्याग कर सकती हूँ।" यह कहते हुए सुभद्रा के नेत्रों में आँसू छलछला आये।

सोमलता कुछ क्षण तक एकटक सुभद्रा के मुख की ओर ताकती रही। सहसा उसके ओठ फड़कने लगे, आँखों से वर्षा-कालीन नदी के जल-वेग की भाँति अश्रु-धारा फूट निकली। वह मेज़ पर झुक गई, और

अपनी बाँह में मुँह छिपाकर सिसकने लगी। सुभद्रा शीघ्रता-पूर्वक उठ कर सोमलता के बग़ल में आ गई, और उसके गले में बाँह डाल कर बोली—"यह क्या बचपन है सोमलता! तुम सामान्य स्त्री नहीं, चिकित्सक हो! इस प्रकार कोई तुम्हें रोते देख लेगा, तो क्या कहेगा?"

सोमलता अपने को सँभाल कर आँसू पोंछती हुई बोली—"क्या चिकित्सकों के हृदय नहीं होता?"

"होता है, परन्तु काफ़ी कड़ा! छोटी-छोटी बातों से वह प्रभावित नहीं होता।"

"छोटी बात हो, तब न!"

"मैं सब समझती हूँ सोमलता! मैं तुम्हारे मन की बात जानती हूँ! परन्तु तुम मुझसे छिपा रही थीं, इसीलिए आज मैंने यह बात छेड़ी, जिससे तुम अपने हृदय की बात मुझ से कह दो। तुम ब्रजनारायण से प्रेम करती हो। है न ठीक?"

"ठीक है!" सोमलता ने सिर झुका कर कहा।

"कैसा दुर्भाग्य!" सुभद्रा ने सहानुभूति-पूर्ण स्वर में कहा।

सोमलता पुनः रोने लगी। सुभद्रा सान्त्वना देने लगी। जब सोमलता फिर कुछ शान्त हुई, तो सुभद्रा ने उससे पूछा—"क्या ब्रजनारायण जानता है कि तुम उससे प्रेम करती हो?"

"नहीं! मैं मर जाना पसन्द करूँगी, पर यह कभी न पसन्द करूँगी कि मेरा प्रेम उस पर प्रकट हो।"

"बहुत ठीक! ऐसा ही करना चाहिये। कल शायद उसकी पत्नी यहाँ से चली जायगी?"

"हाँ।"

"बस ठीक है। इसके पश्चात् तुम्हारी और ब्रजनारायण की भेंट न होगी, और क्रमशः तुम उसे भूल जाओगी।"

"मैं उसे भूलने का भरसक प्रयत्न करूँगी।"

"भगवान् तुम्हें सफलता दे। भाग्य की विडम्बना तो देखो—प्रेम भी हुआ, तो किससे! परन्तु मेरा विश्वास है कि तुम इस अशुभ प्रेम पर विजय पाओगी।"

"तुम्हारी सहायता से!" सोमलता ने आशा-पूर्ण स्वर में कहा।

"ईश्वर की कृपा से!" सुभद्रा बोली।

दूसरे दिन सबेरे ब्रजनारायण की पत्नी अस्पताल से छोड़ दी गई। ब्रजनारायण की माता ब्रजनारायण से बोली—"डाक्टर कक्कड़ ने बड़ी सेवा की! ऐसी सेवा कोई अपनी सगी ही कर सकती थी। इन्हें कुछ देना चाहिये।"

"मैंने उसका प्रबन्ध कर लिया है। डाक्टर कक्कड़ ने, सच पूछो तो, सरोजिनी को नया जीवन दिया है। यदि वह इतनी लगन से देख-भाल न करती, तो सरोजिनी का जीवन ख़तरे में पड़ जाता।"

"हाँ बेटा, यह सची बात है। तो तूने क्या प्रबन्ध किया है?"

ब्रजनारायण ने जेब से एक नीली मख़मल का बक्स निकाला। "यह दे दूँगा।" कह कर उसने बक्स खोला। बक्स में एक सोने की जंज़ीर थी।

"बहुत ठीक! यह तूने बहुत अच्छा सोचा। कितने की है?"

"तीन तोले की है।"

इसी समय डाक्टर कक्कड़ तथा एक नर्स आ गईं। ब्रजनारायण ने जल्दी से बक्स जेब में रख लिया।

"आप लोग जा रहे हैं?" पूछती हुई सोमलता अन्दर आई।

"हाँ! आपकी बहुत याद आयेगी, आपने बड़ी मदद दी!" ब्रज-नारायण की माता बोली।

"वह सब हमारी ड्यूटी थी।" सोमलता ने कहा।

ब्रजनारायण बोल उठे—"साधारण ड्यूटी नहीं थी, उसमें आत्मीयता की पुट थी।"

सोमलता किञ्चित् मुस्करा कर सरोजिनी की ओर बढ़ी। सरोजिनी कुर्सी पर बैठी थी। ब्रजनारायण बाहर निकल गये। सोमलता सरोजिनी से बोली—"आप से मिलने को चित्त व्याकुल हुआ करेगा।"

माता बोल उठी—"यह कभी-कभी आपके पास आ जाया करेगी, और आप भी कभी-कभी दर्शन दिया कीजिए।"

"अवश्य ! अवश्य !"

इसके पश्चात् सोमलता ने सरोजिनी को कुछ स्वास्थ्य-सम्बन्धी उपदेश दिये। तत्पश्चात् उसने बच्चे को गोद में लेकर प्यार किया।

बाहर आकर वह ब्रजनारायण से बोली—"आप तो शायद कल चले जायेंगे ?"

"हाँ, मैं कल चला जाऊँगा। एक-दो मिनट के लिये मुझे आप से कुछ प्राइवेट बात करनी है।"

सोमलता का हृदय धड़कने लगा। वह बोली—"क्या बात है ?"

"एकान्त होता, तो अच्छा था।"

"अच्छा, तो मेरे कमरे में चलिये।"

कमरे में पहुँच कर सोमलता बोली—"कहिये, क्या बात है ?"

ब्रजनारायण ने बक्स निकाल कर सोमलता की ओर बढ़ाते हुये कहा—"आप इसे स्वीकार कीजिये।"

"यह क्या है ?"

"एक छोटा-सा उपहार !"

"उपहार ! उपहार किस बात का ?"

"आपने बड़ा परिश्रम किया !"

"मैंने अपना कर्त्तव्य-पालन किया है—उसके लिये मैं कोई उपहार

या पुरस्कार स्वीकार नहीं कर सकती।"

"आपने कर्त्तव्य की अपेक्षा कुछ अधिक किया है।"

"यदि ऐसा भी हो, तो भी मैं उसकी क़ीमत नहीं ले सकती।"

"उसका मूल्य तो कोई हो ही नहीं सकता! केवल स्मृति-चिह्न के रूप में यह..."

"मि० मेहरोत्रा! आप मेरी इन्सल्ट करते हैं!"

ब्रजनारायण जल्दी से बोल उठे—"नहीं! नहीं! मैं आपका कितना आदर करता हूँ—यह मेरा हृदय ही जानता है! यदि आपको इससे आपत्ति है, तो जाने दीजिए!"

यह कह कर ब्रजनारायण ने बक्स जेब में रख लिया। कुछ क्षण तक दोनों मौन रहे। तदुपरांत ब्रजनारायण ने कहा—"अच्छा, तो आज्ञा दीजिए! यदि कभी मेरे योग्य कोई सेवा हो, तो अवश्य बताइएगा। मैं उसे अपने लिए गौरव समझूँगा।"

सोमलता ने कुछ उत्तर न दिया। सोमलता सिर झुकाये चुपचाप खड़ी थी। उसका कंठ अवरुद्ध हो रहा था। आँसू आँखों से बाहर निकालने के लिये धैर्य का बाँध तोड़ डालने का प्रयत्न कर रहे थे।

ब्रजनारायण बोले—"मेरी धृष्टता के लिये क्षमा कीजिये। मैं जब यहाँ आया करूँगा, तो आप से अवश्य मिला करूँगा।"

सोमलता कुछ भी उत्तर न दे सकी। ब्रजनारायण "गुडबाई" कह कर चले गये। उनके जाते ही सोमलता कुर्सी पर धसक पड़ी, और उसके नेत्रों से अश्रु-धारा बहने लगी।

(४)

उपर्युक्त घटना को एक वर्ष व्यतीत हो गया। सरोजिनी के अस्पताल छोड़ने के पश्चात् सोमलता दो बार सरोजिनी से मिली। एक बार

वह स्वयं सोमलता से मिलने आई थी, और एक दफ़ा सोमलता उसके घर गई थी।

सुभद्रा को सोमलता और सरोजिनी का मिलना-जुलना अच्छा नहीं लगता था। उसने सोमलता से कहा—"देखो सोम, यदि तुम ब्रजनारायण को भूलना चाहती हो, तो सरोजिनी से मिलना-जुलना बन्द कर दो।" सोमलता ने सुभद्रा की यह बात मान ली थी। तब से न सरोजिनी ही सोमलता से मिलने आई, और न सोमलता ही उससे मिलने गई।

एक दिन सोमलता तथा सुभद्रा अवकाश के समय अपने कमरे में बैठी बातें कर रही थीं। इसी समय ब्रजनारायण कमरे के द्वार पर आकर खड़े हो गये। सोमलता तो उन्हें देख कर स्तब्ध-सी हो गई, परन्तु सुभद्रा उठ कर मुस्कराती हुई बोली—"आइये मि० मेहरोत्रा!"

ब्रजनारायण अन्दर गये। सुभद्रा ने एक कुर्सी की ओर संकेत करके कहा—"बैठिये!"

ब्रजनारायण बैठते हुये बोले—"आप लोग अच्छी तो हैं?"

"हाँ! आपकी कृपा है!"

सोमलता की ओर देख कर ब्रजनारायण ने कहा—"आपका स्वास्थ्य कुछ ख़राब है क्या? आप कुछ दुबली हो गई हैं, और चेहरे पर पीलापन भी है।"

सुभद्रा बोल उठी—"हाँ, इधर इनका स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं रहा। आपके यहाँ सब कुशल है?"

ब्रजनारायण के मुख पर दुःख के चिह्न प्रस्फुटित हुए। वे नैराश्यपूर्ण स्वर में बोले—"कुशल कहाँ? सरोजिनी का स्वर्गवास हो गया!"

"ऐं!" कह कह कर सोमलता चौंक पड़ी। "यह कब?"

"दो महीने हुये; यहाँ से यानी अस्पताल से जाने के दो महीने पश्चात् वह मेरे पास पहुँच गई थी। वहीं उसे अकस्मात् हैज़ा हो गया, और

दो दिन के अन्दर मृत्यु हो गई।" यह कह कर ब्रजनारायण ने सिर झुका लिया और वे डबडबाई हुई आँखों के आँसू पी जाने का प्रयत्न करने लगे।

सोमलता ने बड़ा दुःख प्रकट किया। सुभद्रा को भी बड़ा अफ़सोस हुआ। सोमलता बोली—"यहाँ से जाने के बाद दो बार मुझसे भेंट हुई थी।"

"हाँ, उसने बताया था। वह बहुधा आपको याद किया करती थी, और आपके स्नेह-पूर्ण व्यवहार की बड़ी प्रशंसा किया करती थी।"

"बच्चा तो अच्छा है?"

"हाँ वह तो अच्छा है। उसे मैंने माँ के साथ भेज दिया था। वहाँ उसे कौन रखता?"

इसके पश्चात् थोड़ी देर ब्रजनारायण और बैठे। बिदा होते समय वे बोले—"मैंने सोचा, आपसे मिलता भी चलूँ, और यह दुःखद समाचार भी सुना दूँ।"

सोमलता ने पूछा—"अभी रहियेगा?"

"हाँ, दो दिन और रहूँगा। यदि अवकाश मिला, तो चलते समय फिर मिलूँगा।"

ब्रजनारायण के जाने के पश्चात् सोमलता बोली—"थोड़ी देर सो लूँ, बड़ी नींद लगी है।"

यह कह कर सोमलता उठ गई। सुभद्रा किंचित् विषादयुक्त स्वर से अपने ही आप बोली—"भाग्य से कौन लड़ सकता है!"

* * *

दूसरे दिन ब्रजनारायण अपने कमरे में बैठे थे। उनके सामने सुभद्रा उपस्थित थी। सुभद्रा कह रही थी—"मैंने सब बातें आपको बता दीं। अब आप जो उचित समझें, करें।"

"मुझे इसका आभास तो कुछ-कुछ मिल गया था कि सोमलता मुझ से प्रेम करती है, परन्तु निश्चय नहीं था। आज आप के कहने से विश्वास

हो गया। सोमलता-सी पत्नी पाकर मैं अपने को धन्य मानूँगा। मैं उससे वचनबद्ध भी हूँ। जिस समय उसने मेरा उपहार अस्वीकार किया था, उस समय मैंने उससे कहा था कि मेरे योग्य कभी कोई सेवा हो तो बताना, मैं उस सेवा के करने में अपना गौरव समझूँगा। इस दृष्टि से भी मैं इस प्रस्ताव को अस्वीकार नहीं कर सकता।"

"यदि केवल सेवा के विचार से आप इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं, तब तो..."

"नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैं सच बताऊँ? इस समय मैं ऐसा महसूस कर रहा हूँ कि मैं सोमलता से पहले से ही प्रेम करता हूँ।"

"हाँ, यदि ऐसा है, तब तो बड़ी ख़ुशी की बात है! अच्छा तो मैं अब जाती हूँ। आप सोमलता से मिलियेगा?"

"हाँ, शाम को मिलूँगा।"

* * *

सुभद्रा की प्रतीक्षा सोमलता बड़ी बेचैनी के साथ कर रही थी। सुभद्रा के पहुँचते ही उसने पूछा—"क्या हुआ?"

"तुम्हारे भाग्य का फ़ैसला! ब्रजनारायण भी तुमसे प्रेम करता है। शाम को आयगा।"

सोमलता के मुख पर कान्ति आ गई। वह बोली—"सुभद्रा, मैं तुम्हारा यह स्नेह इस जन्म में नहीं भूल सकूँगी।"

"पगली!" सुभद्रा ने हँस कर कहा।

"सोमलता ने उठ कर सुभद्रा का मुख चूम लिया, और हरिणी की भाँति कुलाचें भरती हुई अपने कमरे में चली गई। सुभद्रा अपने-ही-आप बोली—"प्रकृति कितनी प्रबल है!"

---

*

नक़ल

बाबू मोहनलाल माथुर डिप्टी कलक्टर उन लोगों में से थे जो अहर्निश स्त्री-स्वातन्त्र्य का स्वप्न देखा करते थे। उन्होंने अपनी पत्नी को बीसवीं शताब्दी की यह भेंट देनी चाही थी; परन्तु उनकी पत्नी अनसूया देवी ऐसे वातावरण में पली थीं कि उन्हें पति की दी हुई स्वतन्त्रता का उपयोग करना पसन्द न आया। डिप्टी साहब को इससे दुःख तो हुआ ही परन्तु आश्चर्य दुःख से भी अधिक हुआ। ऐसे सयम में जब कि प्रत्येक समझदार और पढ़ी-लिखी स्त्री स्वतन्त्रता का स्वप्न देखा करती है अनसूया देवी का प्राप्त होती हुई स्वतन्त्रता को ठुकरा देना, डिप्टी साहब के लिए कम आश्चर्य की बात नहीं थी।

डिप्टी साहब को अपनी पत्नी की पुरानी चाल एक आँख भी न भाती थी। वह चाहते थे कि जब शाम को उनकी मित्र मण्डली जमा हो तब उनके मध्य में अनसूया देवी भी विराजमान रहें; क्योंकि जब तक मेहमानों के मध्य में घर की लक्ष्मी न हो तब तक शोभा ही क्या!

कभी-कभी ऐसा भी होता था कि डिप्टी साहब की अनुपस्थिति में उनका कोई मित्र आता तो उसे वापस चला जाना पड़ता था। घर में अन्य कोई पुरुष था नहीं जो आगत व्यक्ति का स्वागत करे। डिप्टी साहब का पुत्र अभी केवल सात ही वर्ष का था—एक कन्या भी थी, उसकी वयस १३, १४ वर्ष के लगभग थी। डिप्टी साहब चाहते थे कि उनकी उपस्थिति में यदि उनका कोई मित्र अथवा परिचित आवे तो अनसूया देवी उससे बात करें, उसे बिठावें, उसकी ख़ातिर-तवाज़ो

करें। परन्तु अनसूया देवी इन बातों से दूर ही रहना चाहती थीं। उन्हें पति की इस सनक पर आश्चर्य होता था कि वह स्वयं ही यह बात चाहें कि अनसूया देवी परपुरुष के पास बैठें। उनके मायके में ऐसी बातों को ऐब समझा जाता था। डिप्टी साहब बहुत प्रयत्न करके अनसूया देवी में इतना सुधार कर पाये थे कि वह जब बाहर निकलती थीं तो मुँह खोले रहती थीं—बस इससे अधिक डिप्टी साहब अपनी पत्नी के सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सके।

लेकिन डिप्टी साहब की यह साध कि वह एक स्त्री को बीसवीं शताब्दी की आदर्श स्त्री बनाकर दिखावें अधिक दिनों तक न दबी रह सकी। उन्होंने सोचा यदि वह अपनी पत्नी को अपनी इच्छानुसार नहीं बना सके तो कन्या को तो अवश्य ही बनायेंगे और उनके इस निश्चय को संसार की कोई भी शक्ति नहीं टाल सकती, यह सोच कर डिप्टी साहब ने अपनी समस्त निर्माण शक्तियाँ अपनी कन्या राजलक्ष्मी पर लगाने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

इसी निश्चय के फल स्वरूप राजलक्ष्मी एक ऐसे स्कूल में पढ़ने के लिए भेजी गई जिसमें अप-टू-डेट पढ़ाई होती थी। अप-टू-डेट का तात्पर्य यह है कि, उसमें आचार-विचार तथा रहन-सहन की शिक्षा भी अप-टू-डेट ढंग से ही दी जाती थी। इसके अतिरिक्त डिप्टी साहब ने राजलक्ष्मी को नाचने-गाने की शिक्षा दिलानी भी आरम्भ कर दी थी। क्योंकि बिना नृत्य तथा गान के लड़कियों की शिक्षा अधूरी ही रह जाती है।

अनसूया देवी को जब यह ज्ञात हुआ कि राजलक्ष्मी को नाचने-गाने की शिक्षा भी दी जायेगी तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पति से कहा—"भले घर की लड़कियाँ तो गाना-नाचना सीखतीं नहीं!"

डिप्टी साहब ने उत्तर दिया—"तुम इन बातों को क्या समझो! कुत्ते की दुम बारह बरस तक गड़ी रही फिर भी टेढ़ी निकली। आज

कल भले घर की लड़कियाँ भी इस कला को सीखती हैं—यह तो कला है, कला ! यह किसी की बपौती नहीं है। किसी काल में हमारे घर की स्त्रियाँ सब कलाओं में प्रवीण होती थीं।"

इसके पश्चात् डिप्टी साहब ने दो-चार भले घरों के नाम ले कर कहा—"इन सब घरों की लड़कियाँ सीखती हैं कि नहीं ? कमला ने नृत्य में पुरस्कार पाया, चन्द्रकला को गाने में मेडल मिला—यह सब क्या भले घरों की नहीं हैं।"

अनसूया देवी इस तर्क पर क्या कहतीं। परन्तु इन उदाहरणों के प्रस्तुत होते हुए भी अनसूया के अन्तःकरण ने यह स्वीकार न किया कि लड़कियों को नाचना-गाना सिखाना कोई अच्छी बात है। राजलक्ष्मी भी इन कलाओं को सीखने के लिए बड़ी ही उत्सुक थी। माता के आपत्ति करने पर उसने कहा—"वाह ! आजकल तो अच्छे-अच्छे घरों की सभी लड़कियाँ सीखती हैं।"

पिता-पुत्री की सम्मिलित शक्ति के सामने अनसूया की एक न चली। राजलक्ष्मी गाना-नाचना सीखने लगी। इनको शिक्षा देने के लिए दो शिक्षक नियुक्त किये गये।

राजलक्ष्मी दिन में स्कूल अटेण्ड करती थी और रात में साढ़े सात से साढ़े आठ बजे तक संगीत की शिक्षा प्राप्त करती थी। जिस समय रात में तबला ठनकता और राजलक्ष्मी 'आ...आ' करके स्वर भरती उस समय अनसूया देवी को अपने मायके की याद आजाती थी। अनसूया देवी के मायके का मकान एक ऐसे मुहल्ले के निकट था, जहाँ इस प्रकार की आवाज़ें नित्य ही सुनने को मिलती थीं। अनसूया देवी इसे भाग्य का व्यंग्य ही समझती थी कि जिन आवाज़ों को सुन कर वह अपने घर वालों को घृणा प्रकट करते हुए देखकर स्वयं भी घृणा प्रकट करने की अभ्यस्त हो गई थी—वे आवाज़ें अब उनके घर में ही प्रतिध्वनित होने

लगीं ! परन्तु बेचारी मजबूर थीं। कुछ भले घरों ने ऐसे उदाहरण उपस्थित कर दिये थे कि उनके समक्ष कोई तर्क ठहरता ही न था। बेचारी चुपचाप यह सब लीला देख देखकर मन ही मन कुढ़ा करतीं। अपने को यह समझाने का बहुत प्रयत्न करती थीं कि आजकल तो ऐसा होता ही है—समय के अनुसार यह जो हो रहा है ठीक हो रहा है; परन्तु फिर भी वह प्रारम्भ में अपने चित्त को इस कार्य के अनुकूल न बना सकीं।

जैसे ही जैसे राजलक्ष्मी नृत्य तथा संगीत में उन्नति करने लगी—डिप्टी साहब का उत्साह भी वैसे ही वैसे परिवर्द्धित होने लगा। डिप्टी साहब उस दिन का स्वप्न देखने लगे जब राजलक्ष्मी की ख्याति देश देशान्तर में फैल जायेगी।

इसमें सन्देह नहीं कि राजलक्ष्मी भी प्राणपण से परिश्रम कर रही थी। स्कूली शिक्षा के साथ ही साथ नृत्य-संगीत की शिक्षा भी चल रही थी; परन्तु फिर भी राजलक्ष्मी दोनों में समान रूप से उन्नति कर रही थी। उधर तो वह टेन्थ क्लास में शिक्षा प्राप्त कर रही थी और क्लास में उसकी पोज़ीशन भी अच्छी थी और इधर तीन चार प्रकार के नृत्य भी उसने सीख लिये थे और ठुमरी दादरा की सीमा पार करके ख़याल का अभ्यास आरम्भ कर दिया था।

क्रमशः अनसूया देवी भी अपना विरोध भूलने लगीं। क्योंकि अब वह अभ्यस्त हो गई थीं। इसके अतिरिक्त जब वह अपनी सखी सहेलियों को राजलक्ष्मी की प्रशंसा करते सुनतीं तो बड़ा सन्तोष होता था और वह सोचने लगतीं कि—"चलो सब ठीक है। जैसा समय हो वैसा ही करना चाहिए।" राजलक्ष्मी जब अपने सुमधुर कण्ठ से माता को प्रातःकाल प्रभाती तथा भजन सुनाती तो माता को बड़ा आनन्द मिलता था। उस आनन्द में विभोर होकर अनसूया देवी अपनी विरोध-भावना विस्मृत कर देतीं और उन्हें राजलक्ष्मी पर गर्व हो आता।

(२)

राजलक्ष्मी अब सत्रह वर्ष की हो गई थी। अब वह इएटरमीडियेट के प्रथम वर्ष में शिक्षा प्राप्त कर रही थी। नाचने-गाने में भी काफ़ी उन्नति कर चुकी थी और इस वर्ष इन कलाओं की प्रतियोगिता में भाग लेने वाली थी। मोटर चलाना भी उसने सीख लिया था और बहुधा मोटर लेकर अकेली निकल जाती थी। फ़ैशन भी अँग्रेज़ी ही था। सिर के बाल अँग्रेज़ी ढंग के पट्टेनुमा (Bobbed), ऊँची एड़ी का जूता, साड़ी तथा जम्पर। पिता से अधिकतर अँग्रज़ी में ही बात किया करती थी।

एक दिन डिप्टी साहब राजलक्ष्मी से बोले—"राजो ! कल कुछ लोग तुम्हारा गाना सुनने आवेंगे।"

"कौन ?"—राजो ने पूछा।

"कुछ डिप्टी कलक्टर हैं, कुछ वकील हैं।"

"तो क्या पूरी फ़ौज आवेगी ?"—राजो ने मुँह बनाकर पूछा।

डिप्टी साहब हँसकर बोले—"नहीं, पाँच-छः आदमी होंगे।"

"किस समय आवेंगे ?"

"यही आठ बजे रात को।"

"लेकिन मुझसे नाचने को न कहना !"

"क्यों ?"

"नहीं, मैं अभी किसी बाहरी आदमी के सामने नहीं नाचूँगी।"

"परन्तु तुम्हें तो कम्पटीशन में सम्मिलित होना है—ऐसे शरमाओगी तो कैसे काम चलेगा ?"

"डोएट बी सिली फ़ादर ! (बेवकूफ़ मत बनो पिता जी) मैं शरमाती नहीं हूँ।"

"तब फिर ?"

"मैं अभी अपना आर्ट किसी पर प्रकट नहीं करना चाहती।

कम्पटीशन में जाना है इसलिए।"

"आई सी ! मैं अब समझा। अच्छा जैसी तुम्हारी इच्छा।"

"आपको कहीं जाना तो नहीं है ?"—राजो ने पूछा।

"क्यों ?"

"मैं कार ले जाना चाहती हूँ।"

" कहाँ ?"

"बेवकूफ़ी भरे प्रश्न मत कीजिये !"

"आलराइट डार्लिङ्ग ! परन्तु देर मत करना।"

राजो ने कुछ उत्तर न दिया और कूदती फाँदती अपने कमरे में चलीं गई। थोड़ी देर पश्चात् सज-धज कर निकली। कपड़े तो बढ़िया थे ही, मुख पर पाउडर तथा लिपस्टिक भी शोभायमान थी। राजलक्ष्मी का गौरवर्ण तो पहले से ही था—पाउडर से वह और भी बढ़ गया, लिपस्टिक से ओठों की लाली में वृद्धि हो गई। राजो को इस प्रकार स्वच्छन्दता-पूर्वक अकेली घूमती-फिरती देखकर अनसूया देवी का माथा ठनका। डिप्टी साहब तो राजलक्ष्मी द्वारा अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति में इतने लिप्त हो गये थे कि उन्हें राजलक्ष्मी एक भावी आदर्श महिला दिखाई पड़ रही थी। वह उस दिन का स्वप्न देख रहे थे जब समाचारपत्रों में वह एक आदर्श पिता माने जायेंगे और राजलक्ष्मी एक आदर्श महिला!

अनसूया देवी पति से बोलीं—"राजो का इस प्रकार अकेली घूमना फिरना ठीक नहीं। मेरी बात वह सुनती नहीं, मुझे तो गँवार ही समझ रक्खा है। और तुम उसे मना नहीं करते।"

"मना करने की आवश्यकता क्या है ? वह पढ़ी-लिखी समझदार है, अपना भला बुरा सब समझती है।"

"भला-बुरा समझे या न समझे, परन्तु अभी उसे संसार का अनुभव तो नहीं है।"

"तुम्हें तो बड़ा अनुभव है !"—डिप्टी साहब मुसकराकर बोले।

अनसूया देवी अप्रतिभ होकर सोचने लगीं—"मुझे सब ने बेवकूफ़ समझ रक्खा है और अपने को बड़ा बुद्धिमान समझते हैं, परन्तु—।"

डिप्टी साहब बोल उठे—"तुम कभी अकेली बाहर नहीं निकली हो इसलिए राजो के लिए भी डर होता है। परन्तु वास्तव में डर की कोई बात नहीं है।"

"मुझे तो डर लगता है। कहीं कुछ ऊँच-नीच हो जाय तो—!"

"ऊँच-नीच हो जाना दिल्लगी है। क्या मजाल जो कोई आँख उठाकर देख तो ले! अँग्रज़ों की लड़कियाँ अकेली घूमा करती हैं—भला उनसे कोई बोल तो ले !"

अनसूया देवी ने मन में सोचा—परन्तु यदि कोई बोले और लड़की की इच्छा भी उससे बोलने की हो तब क्या होगा ? परन्तु यह बात पति से कहने का साहस न हुआ। केवल इतना ही कहा—"मेरे जी में जो बात आई वह मैंने कह दी—अब तुम अपना सोच समझ लो, पीछे यह न कहना कि तुमने भी नहीं चेताया।"

डिप्टी साहब हँसकर बोले—"सो इससे तुम निश्चिंत रहो। ऐसा कहने का कभी अवसर ही न आवेगा।"

"अब कैसे आवेगा—मैंने तो तुम्हें चेता दिया।"

"हाँ ! हाँ ! बड़ा अच्छा किया। कहो तो लिखकर दे दूँ कि तुमने चेता दिया !"

"तुम तो बात का बतंगड़ बनाते हो। बात करना भी आफ़त है—जैसे मैं कोई हूँ ही नहीं !" अनसूया देवी कुछ उत्तेजित होकर बोलीं।

"हो क्यों नहीं ! तुम लड़की की माता हो – माता ! तुम जो कुछ कहती हो सदिच्छा से कहती हो, परन्तु बुद्धि से कुछ भी काम नहीं लेती—इतनी ही कमी है। और बुद्धि हो भी कहाँ से—समय की प्रगति

से तुम बिलकुल अनभिज्ञ हो, तुम्हारा कोई दोष नहीं।"

"समय चाहे जितना बदल जाय परन्तु आदमी की इच्छाएँ तो नहीं बदलतीं ? भूख, प्यास, लोभ, लालसा, सुख और आनन्द की इच्छा—ये सब तो नहीं बदलते !"

"ओहो ! आज तो तुम बड़े ज्ञान की बातें कर रही हो !"

"ज्ञान-वान तो जानो तुम ! जो ज्ञानी हो वह ज्ञान जाने— मैं तो दुनिया के चलन की बात कहती हूँ। समय लाख बदल जाय; पर भूख-प्यास तो लगती ही है, अच्छी चीज़ को देख कर मन तो ललचा ही उठता है। समय के साथ कुछ आदमी का मन तो बदल ही नहीं गया—मन तो वैसा ही है। सच पूछो तो मनमानी करने का अवसर ख़ूब मिलने लगा—यही समय बदला है। पहले तो कुछ डर-दबाव था भी, अब वह भी जाता रहा !"

"डर-दबाव के कारण सब बड़े भले बने रहते थे, क्यों न ?"

"डर-दबाव के कारण मन से चाहे भले न बने रहते हों, पर बुराई भी न कर पाते थे। मन से चाहे कोई बुरा हो; पर जब उसे बुराई करने का अवसर ही न मिलेगा तब क्या करेगा ?"

"मनुष्य जानवर नहीं है जो बाँध कर रक्खे जाँय। अब वह ज़माना चला गया जब मनुष्य जानवरों की तरह बन्द करके रक्खे जाते थे—विशेषतः स्त्रियाँ ! इसी लिए तो हमारी स्त्रियाँ बिलकुल पशु बन गईं। घर का काम करने और बच्चे जनने के अतिरिक्त और उन्हें कुछ नहीं आता।"

"मैं बाँधकर और बन्द करके रखने की बात थोड़े ही कहती हूँ। मैं तो यह कहती हूँ कि उनकी देख-रेख रक्खी जाय। उन्हें मनमाने ढंग से अकेले घूमने-फिरने न दिया जाय। क्या तो इतनी सख़्ती थी कि बन्द करके और बाँध कर रक्खी जाती थीं और क्या अब इतनी स्वतन्त्रता दे

दी कि चाहे जहाँ जाँय, चाहे जो करें। यह अच्छी रही! यदि वह बात बुरी थी तो यह भी कोई अच्छी बात नहीं है—एक बुराई छोड़ी तो दूसरी पकड़ ली। ऊपर से कहते हैं उन्नति हो रही है। वाह री उन्नति!"

डिप्टी साहब पत्नी के कथन की उपेक्षा करते हुए बोले—"हाँ! हाँ! तुम ठीक कहती हो। मैं उसे अच्छी तरह समझा दूँगा, घबराओ नहीं।"

अनसूया देवी पति का उपेक्षा भाव समझ कर चुप हो गईं; परन्तु पति के इस व्यवहार से दुःख बहुत हुआ।

(३)

आज नगर के एक थियेटर हाल में लड़कियों का नृत्य तथा संगीत होगा। प्रवेश टिकिट द्वारा हो सकेगा। टिकिट से जो आय होगी वह हाल का किराया इत्यादि तथा कन्याओं को पुरस्कार देने के पश्चात् किसी सार्वजनिक संस्था को दान कर दी जायेगी।

राजलक्ष्मी देवी प्रातःकाल से ही बहुत व्यस्त थी। सबेरे आठ बजे उसके शिक्षकगण आ गये थे। बारह बजे तक उन्होंने राजलक्ष्मी का रिहर्सल कराया। तत्पश्चात् भोजन कर के वह सो गई। तीन बजे के लग-भग सोकर जागी। चार बजे पुनः शिक्षकगण आ गये। चार बजे से छः बजे तक पुनः रिहर्सल हुआ।

थियेटर हाल में साढ़े आठ बजे पहुँच जाना था, नौ बजे से प्रोग्राम शुरू होना था। डिप्टी साहब ने अपने तथा अनसूया देवी के लिए दो सीटें रिज़र्व करा ली थीं। राजलक्ष्मी ने आज घंटा भर परिश्रम करके अपना शृंगार किया था।

ठीक समय पर राजलक्ष्मी थियेटर हाल पहुँच गई। डिप्टी साहब तथा अनसूया देवी भी साथ ही गये। अनसूया देवी को सीट पर बिठा

कर डिप्टी साहब स्टेज पर आ गये। आज उन्हें बड़ा उत्साह था। उन्हें विश्वास था कि राजो प्रथम पुरस्कार अवश्य प्राप्त करेगी। वह बारंबार राजो से कहते—"राजो, देखो घबराना नहीं। घबरा जाओगी तो सब ख़राब हो जायेगा!" जब डिप्टी साहब ने कई बार राजो को एण्टी-घबराहट का शाब्दिक डोज़ दिया तो वह झल्ला कर बोली—"पिताजी, आप मुझे परेशान मत कीजिये। घबराहट की बारबार याद दिलाकर आप सचमुच मुझे घबरा देंगे। आप जाकर अपनी सीट पर बैठिये।"

डिप्टी साहब बोले—"अच्छा! अच्छा! मैं जाता हूँ; परन्तु सावधान रहना!" इतना कह कर डिप्टी साहब अपनी सीट पर जा बैठे।

दर्शकों में कालेज के लड़कों की भी यथेष्ट संख्या थी। जब नौ बज गया और प्रोग्राम शुरू न हुआ तो इन लोगों ने सीटियाँ बजाना और हो-हल्ला मचाना आरंभ किया। इन लोगों को शान्त करने की शक्ति ब्रह्मा में भी नहीं है, मनुष्य का तो ज़िक्र ही क्या! और इस समय तो सब टिकिट लेकर आये थे, अतएव इस प्रकार का व्यवहार करना ये लोग अपना अधिकार समझ रहे थे।

सवा नौ पर प्रोग्राम शुरू हुआ। सब से पहिले एक लड़की का संगीत हुआ। यह लड़की बहुत दुबली-पतली यक्ष्मा की रोगिणी सी दिखाई पड़ती थी—आवाज़ भी बहुत ही महीन थी। और सब लोग तो शान्त बैठे रहे, परन्तु विद्यार्थियों ने फबतियाँ कसनी आरंभ कीं। एक बोला—"अमाँ, इस बुख़ार को हटाओ सामने से!" दूसरी आवाज़ आई—"इसे पुरस्कार में एक शीशी डोंगरे का बालामृत देना चाहिए!" तीसरी आवाज़ आई—"काडलिवर ऑयल अधिक अच्छा रहेगा!" इस प्रकार इतनी फबतियाँ कसी गईं कि एक ही गाना गाकर उस बेचारी को उठ जाना पड़ा। ये आवाज़ें सुन कर भगवान् जाने उसके और उसके माता-पिता पर क्या बीती होगी!

दूसरी लड़की आई। यह पहिली से अधिक अच्छा गाती थी, अतएव सब ने शान्ति पूर्वक इसका गाना सुना। दो गीत गाने के पश्चात् जब इसने तीसरा आरंभ किया तो विद्यार्थीगण चिल्लाये—"नो मोर! नो मोर!" एक बोला—"वाह! यह तो मज़े में ही आगई!" अन्त में उसे भी अपना तीसरा गाना जल्दी समाप्त करके उठ जाना पड़ा।

राजलक्ष्मी का पाँचवाँ नम्बर था। जब यह गाने बैठी तो बिल्कुल सन्नाटा छा गया क्योंकि राजलक्ष्मी की आवाज़ भी बुलन्द थी और गाती भी अच्छा थी। डिप्टी साहब अनसूया देवी से बोले—"देखा! राजो के गाने में लोग कितने चुप बैठे हैं! इसी का नाम तो गाना है, अभी तक तो मज़ाक होता रहा।" दो गाने गाकर जब राजलक्ष्मी जाने लगी तो तड़ातड़ तालियाँ बजने लगीं और वन मोर! वन मोर! (एक और! एक और!) का शोर मच गया। अतएव राजलक्ष्मी ने एक गाना और गाया। डिप्टी साहब बड़े प्रसन्न थे! उन्हें विश्वास हो गया कि प्रथम पुरस्कार राजो को ही मिलेगा।

राजलक्ष्मी के पश्चात् तीन अन्य लड़कियों ने गाया परन्तु किसी का गाना नहीं जमा। सब के गाते समय काफ़ी हो-हल्ला होता रहा।

गाने का प्रोग्राम समाप्त हो गया, अब नृत्य का प्रोग्राम आरंभ हुआ। प्रोग्राम के संचालक ने इसकी घोषणा की।

पहिले एक कन्या का नृत्य हुआ। लड़की छोटी थी—सबको उसका नृत्य बहुत ही प्यारा लगा। सब ने उसकी प्रशंसा की। डिप्टी साहब को चिन्ता उत्पन्न हुई कि कहीं नृत्य का प्रथम पुरस्कार इसी कन्या को न मिल जाय! इसके पश्चात् एक और लड़की का नृत्य हुआ; इसके नाच में लोगों ने दिलचस्पी नहीं ली। एक ओर से आवाज़ आई—"इसे किसी बंदरवाले ने सिखाया है क्या?"

इसी प्रकार तीन लड़कियों का नृत्य हुआ। इनके पश्चात् राजलक्ष्मी

की बारी आई। उसके स्टेज पर आते ही तालियाँ बजने लगीं। डिप्टी साहब का कलेजा हाथ भर का हो गया। तालियों की गड़गड़ाहट बन्द होते ही सब से पीछे के क्लास से एक ऐसी आवाज़ आई जो अत्यन्त आपत्तिजनक थी। कुछ लोग तो बिगड़ उठे—"कौन है! इसे निकाल दो!" पर किसी का पता लगे तब तो निकाला जाय! अनसूया देवी को बड़ा बुरा लगा। वह पति से बोलीं—"यही सुनने के लिए लड़की को यहाँ नचाने लाये?"

डिप्टी साहब बोले—"पता लग जाय तो साले को जेल में बंद करवा दूँ। और यह तो दुनिया है, बकने दो!"

अनसूया देवी बोलीं—"ठीक है! दुनिया तो बकती ही है, परन्तु—"

"अच्छा इस समय चुप रहो!"—डिप्टी साहब झल्लाकर बोले।

राजलक्ष्मी का नृत्य आरंभ हो गया। राजलक्ष्मी ने तीन प्रकार के नृत्य दिखाये। खूब तालियाँ पिटीं। वन्स मोर! वन्स मोर! की आवाज़ें आती रहीं। पर राजलक्ष्मी ने थक जाने के कारण दोबारा नाचना स्वीकार न किया। राजलक्ष्मी के पश्चात् दो लड़कियों का नृत्य होकर प्रोग्राम समाप्त हुआ। इसके पश्चात् पुरस्कार की घोषणा हुई। संगीत तथा नृत्य दोनों में प्रथम पुरस्कार राजलक्ष्मी को ही मिला। अब डिप्टी साहब की प्रसन्नता का क्या ठिकाना! परिचित व्यक्ति डिप्टी साहब को बधाइयाँ देने लगे। डिप्टी साहब की महत्वाकांक्षा आज पूरी हो गई!

(४)

उपर्युक्त घटना के छः मास पश्चात् एक दिन राजलक्ष्मी पिता के पास आकर बोली—"पिताजी, यह पत्र पढ़िये!"

डिप्टी साहब ने पत्र खोल कर पढ़ा। पत्र एक प्रसिद्ध फिल्म कंपनी के डाइरेक्टर की ओर से अँग्रेज़ी में था। उसमें लिखा था:—

डियर मिस माथुर,

आपका कृपा पत्र तथा फोटो प्राप्त हुआ। धन्यवाद ! यदि आप हमारे स्टुडियो में पधारने का कष्ट उठावें तो आपका ट्रायल (परीक्षा) लिया जाय। ट्रायल लेने के पश्चात् ही आपकी नौकरी अथवा कन्ट्राक्ट (ठेका) के सम्बन्ध में अन्तिम निश्चय किया जा सकेगा। वैसे आपका फोटो और संगीत तथा नृत्य सम्बन्धी प्रमाण-पत्रों को देखकर यह निस्सं-कोच कहा जा सकता है कि आप ट्रायल में उत्तीर्ण होंगी। साथ में हमारे यहाँ की, एक्टर्स तथा एक्ट्रैसेज़ सम्बन्धी नियमावली भेजी जा रही है। इन नियमों का पालन अनिवार्य है।

पत्र पढ़कर डिप्टी साहब कुछ क्षणों के लिए स्तब्ध हो गये। कुछ क्षणोंपश्चात् हवास दुरुस्त करके बोले—"तूने बिना मुझ से पूछे ही पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया ?"

"मैंने सोचा था कि पहले सब ठीक-ठाक कर लूँ तब आपको बताऊँ।"—राजो ने कहा।

"ठीक-ठाक क्या करना है। क्या तू समझती है कि मैं तुझे फ़िल्म कम्पनी में जाने की आज्ञा दे दूँगा ?"

"क्यों ? हर्ज क्या है ? आख़िर संगीत तथा नृत्य सीखने से लाभ ही क्या हुआ ?"

डिप्टी साहब आँखें फाड़ कर बोले—"मैंने तुझे संगीत और नृत्य की शिक्षा कला की दृष्टि से दिलाई है, न कि इसलिए कि तू फ़िल्म कम्पनी में जाय।"

"तो इस कला का प्रदर्शन भी तो होना चाहिये।"

"प्रदर्शन ऐसे ही अवसरों पर होगा जैसा कि पिछली पुरस्कार प्रतियोगिता में हुआ था।"

"उस प्रदर्शन से फ़ायदा क्या है ?"

"ख्याति ?"

"मैं ऐसी टुच्ची ख्याति नहीं चाहती। मैं चाहती हूँ कि मैं अपनी कला से ख्याति के साथ-साथ अर्थोपार्जन भी करूँ।"

"मेरे जीते जी ऐसा कभी न होने पाएगा। मैं यह कभी सहन न करूँगा कि मेरी लड़की रुपया कमाने के लिए नाचती-गाती फिरे! मैं इसी वर्ष तेरा विवाह कर देना चाहता हूँ। उसके पश्चात् जो तेरा और तेरे पति का जी चाहे वह करना!"

"अच्छा तो आपने मुझे विवाह बंधन में जकड़ने के लिए यह सब कष्ट उठाया!"

डिप्टी साहब चकित होकर राजलक्ष्मी का मुँह ताकने लगे। कुछ क्षणों तक अवाक् रह कर तब बोले—"तो क्या आजन्म कुमारी रहना चाहती है ?"

"आजीवन कुमारी रहूँ या न रहूँ परन्तु फ़िलहाल मेरा विवाह करने का बिलकुल इरादा नहीं है। जब मैं अर्थोपार्जन कर सकती हूँ तो विवाह करके अपनी स्वाधीनता क्यों नष्ट करूँ!"

"विवाह करने से स्वाधीनता नष्ट होती है ?"

"बेशक! नृत्य तथा संगीत की इतनी ऊँची शिक्षा दिलाकर आप मुझे उस गड्ढे में ढकेल देना चाहते हैं जहाँ मेरी सारी कला नष्ट हो जावेगी!"

"क्यों, नष्ट क्यों हो जाएगी ?"

राजलक्ष्मी बग़लों में हाथ देकर और माथे पर आते हुए बालों को सिर के झटके से हटाकर बोली—"पिता जी! मैं आप से इस प्रकार की बातें करना उचित नहीं समझती, परन्तु जब आप सुनना ही चाहते हैं तो सुनिये। विवाह करके पति की आज्ञा पालन करने, घर का काम-काज सँभालने तथा बच्चे जनने में मेरी यह कला नष्ट न होगी तो क्या बढ़ेगी ?

यदि आप को ऐसा ही करना था तो मुझे इतनी ऊँची शिक्षा व्यर्थ ही दिलाई। स्वाधीनता का स्वाद चखा कर आप मुझे पराधीन बनाना चाहते हैं। परन्तु जो स्वाधीनता का स्वाद चख चुका है वह कदापि पराधीन न बनेगा—यह याद रखिये। पराधीन बनने की अपेक्षा वह मृत्यु का आलिङ्गन करना अधिक अच्छा समझेगा। और आप मेरा विवाह करने वाले कौन होते हैं? अपना विवाह तो मैं स्वयं ही करूँगी। यद्यपि अभी मेरा विचार विवाह करने का बिलकुल नहीं है।"

डिप्टी साहब उठकर खड़े हो गये और मेज़ पर हाथ पटकते हुए बोले—"गुस्ताख़ लड़की! ऐसी बातें करते तुझे शरम नहीं आती—अपने पिता से—।"

क्रोधावेश में डिप्टी साहब का मुँह बन्द हो गया। राजलक्ष्मी पिता के क्रोध से कुछ भी भयभीत न होती हुई व्यंग से मुस्कराती हुई बोली—"तो यह कहिये—हाथी के खाने के दाँत और दिखाने के दाँत अलग-अलग हैं! आप नक़ल तो अँग्रेज़ी की करने चले, पर हृदय ठेठ हिन्दुस्तानी ही रहा। इससे तो यही प्रतीत होता है कि आपने मेरा जीवन नष्ट करने के लिए ही यह सब किया। यदि आप मुझे गँवार ही रखते तो अधिक अच्छा रहता। उस समय मैं आपकी स्वेच्छाचारिता को कदापि बुरा न समझती। परन्तु अब! अब तो जो मैं चाहूँगी वही होगा।" इतना कह कर राजलक्ष्मी तेज़ी के साथ पिता के सामने से चली गई।

डिप्टी साहब ने अनसूया देवी को बुलाकर और उससे सब वृत्तान्त कहकर बोले—"देखो अपनी लड़की की करतूत! आज से यह घर से निकलने पावे।"

अनसूया देवी बोलीं—"मेरी लड़की! मेरी लड़की तो यह उसी दिन से नहीं रही थी जिस दिन कि तुमने मुझे डाँट दिया था। याद

है, मैंने तुम्हें चेताया था ? अब तो वह तुम्हारी लड़की है, तुम जैसा चाहो करो। मेरी बात वह भला काहे को मानने लगी। मुझे तो वह एक नौकरानी के बराबर समझती है ?"

डिप्टी साहब बोले—"अच्छा तो मैं कल इसका इन्तज़ाम कर दूँगा। मैंने उसे स्वाधीनता दी है तो मैं उस स्वाधीनता को ज़ब्त भी कर सकता हूँ।"

* * *

दूसरे दिन प्रातःकाल राजलक्ष्मी अपने कमरे से नहीं निकली। दिन चढ़ गया। डिप्टी साहब अनसूया देवी से बोले—"आज अभी तक उठी नहीं ?"

"न उठी होगी—मैं तो उसके कमरे में जाती नहीं।"

डिप्टी साहब टहलते हुए कमरे की ओर गये। कमरे का द्वार बंद था। डिप्टी साहब ने धीरे से द्वार पर धक्का दिया तो कपाट खुल गये। कमरा ख़ाली था। डिप्टी साहब अन्दर घुसे तो कुछ सूना-सा प्रतीत हुआ। राजलक्ष्मी की मेज़ के पास पहुँचे तो पेपरवेट के नीचे एक लिफ़ाफ़ा दबा हुआ था। डिप्टी साहब ने उसे उठाकर देखा। उस पर लिखा था—"पिता जी की सेवा में।" डिप्टी साहब का हृदय डूबने लगा। काँपते हुए हाथों से उन्होंने पत्र निकाला। पत्र में लिखा था—

"पिताजी ! मैं जाती हूँ। मैं आपकी इच्छाओं की दास बनकर नहीं रह सकती। आपने मुझे केवल अपनी विकृत महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने के लिए कठपुतली बनाना चाहा था; परन्तु आप यह भूल गये कि मेरे पास भी हृदय और मस्तिष्क है। इन दोनों के स्वस्थ रहते मैं किसी भी प्राणी के हाथों की कठपुतली नहीं बन सकती। मैं स्वाधीन रहकर संसार में विचरना चाहती हूँ। मेरी भी कुछ महत्वाकांक्षाएँ हैं और खेद के साथ कहना पड़ता है कि वे आपकी महत्वाकांक्षाओं से सर्वथा भिन्न हैं।

अतएव मेरा और आप का विच्छेद होना ही ठीक है। मुझे तलाश करने का प्रयत्न न कीजिएगा। यदि आपने मुझे तलाश करके बलपूर्वक अपने पास बुलाना चाहा तो आपके हाथ केवल मेरी लाश लगेगी। अन्यथा वैसे तो कदाचित् कभी आप मेरा दृष्टिकोण समझकर यह महसूस करने लगें कि जो आप ग़लती पर थे और परिस्थिति के अनुसार मैंने जो कुछ किया ठीक किया। तब शायद मेरा और आपका पुनर्मिलन हो सके। मुझे माता जी के विलग होने का हार्दिक दुःख है। वह चाहे जैसी हों, मेरा हृदय उन्हें सदैव याद करता रहेगा। मेरा ऊपरी व्यवहार उनके साथ चाहे जैसा रहा हो, परन्तु मेरा हृदय उन्हें प्यार करता है। मुझे भैया की भी बहुत याद आती रहेगी और वह भी मुझे बहुत याद करेगा—यह भी बड़े दुःख की बात है। परन्तु इन सबका उत्तरदायित्व मुझ पर नहीं, केवल आप पर है। विदा!

आप की अयोग्य पुत्री—

राजो"

डिप्टी साहब के हाथ से पत्र छूट पड़ा, वह सिर पर दोनों हाथ रख कर कुरसी पर गिर पड़े, नेत्रों से अश्रुधारा फूट निकली।

बड़ा दिन

रविवार का दिन था। प्रातःकाल के नौ बज चुके थे। मि० लॉरेन्स बर्क सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस अपने बँगले के सामने बने हुए दूबिया चौगान के बीच एक गोल चबूतरे पर धूप में बैठे हुए चाय पी रहे थे। मेज़ के चारों ओर तीन प्राणी और बैठे थे। इनमें से एक प्रौढ़ा थी जो मि० बर्क की पत्नी थी। दूसरी एक १८-१६ वर्षीया युवती थी, यह मि० बर्क की कन्या थी। तीसरे सज्जन एक २४-२५ वर्ष के युवक थे। यह हाल ही में विलायत से आये थे और ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त थे। इनका नाम डेविड चाइल्ड था।

चाय पी चुकने के पश्चात् मि० बर्क ने मि० चाइल्ड को सिगरेट दी। दोनों ने सिगरेट सुलगाई। कुछ क्षणों तक सब लोग मौन बैठे रहे। सहसा मि० बर्क ने मि० चाइल्ड से पूछा—"क्यों डेविड, यह देश तुम्हें कैसा पसन्द आया?"

डेविड ने कहा—"कम से कम यहाँ का जलवायु और मौसम तो मुझे बहुत ही पसन्द आया। आजकल दिसम्बर में यह धूप घर (विलायत) में कहाँ नसीब हो सकती है? कितनी स्वच्छ धूप है।" यह कहते-कहते डेविड ने नेत्र बन्द कर लिये और कुर्सी की पीठ के सहारे अर्द्ध-शयनावस्था में हो गया। मानो उसे बड़ा सुख मिल रहा है।

"इतनी जल्दी राय मत बनाओ, पहले एक बार यहाँ की गर्मी का अनुभव कर लो।"—मि० बर्क ने मुस्कराते हुए कहा।

मिसेज़ बर्क बोल उठीं—"यहाँ की गर्मी देखने के बाद, तुम दूसरी

ही राग अलापोगे।"

मिस बर्क खिलखिलाकर हँस पड़ीं और बोलीं—"जब तुम घुड़दौड़ के घोड़े की भाँति पसीने से भीगे हुए हाँफोगे तब तुम्हें पता लगेगा।"

"कोई चिन्ता नहीं ! गर्मी आएगी तब देखा जायगा। अभी से उसकी चिन्ता करके अपना मज़ा क्यों किरकिरा करें।"

"यहाँ का शीतकाल तो निःसन्देह बड़ा ही सुन्दर होता है।"—मि० बर्क ने गम्भीर होकर कहा।

"गर्मियों में भी पहाड़ पर बड़ा आराम मिलता है।"—मिसेज़ बर्क ने कहा।

"हाँ ! परन्तु सब लोग तो पहाड़ पर जा ही नहीं सकते।"—मि० बर्क बोले।

"क्यों ?"—मि० चाइल्ड ने पूछा।

"छुट्टी कहाँ मिलती है। हमारी-तुम्हारी नौकरी ऐसी है कि हम लोग गर्मी भर पहाड़ पर नहीं रह सकते। यह बात दूसरी है कि पन्द्रह बीस दिन के लिए सैर कर आयें।"

"तो आप गर्मियों में भी यहीं रहते हैं ?"—चाइल्ड ने पूछा।

"मैं यहीं रहता हूँ। ओलीविया और ओक्टेविया को भेज देता हूँ।"

ओलीविया मि० बर्क की पत्नी का नाम था और ओक्टेविया पुत्री का।

"कौन से पहाड़ पर भेजते हो ?"—चाइल्ड ने पूछा।

"मसूरी या नैनीताल ! अधिकतर मसूरी ही जाती हैं। इन्हें मसूरी ही पसन्द है।"

"तब तो इस बार मैं भी इन लोगों के साथ जाऊँगा।"—चाइल्ड बोला।

"छुट्टी कहाँ मिलेगी !"—ओलीविया ने कहा।

"मैं छुट्टी ले लूँगा। मैं यहाँ कुछ प्राण देने नहीं आया हूँ। अभी जब तक मैं यहाँ की गर्मी का अभ्यस्त न हो जाऊँ तब तक तो सरकार को मुझे छुट्टी देनी ही पड़ेगी अन्यथा सलाम।"

सलाम कहते समय मि० चाइल्ड ने 'सेल्यूट' के ढङ्ग से हाथ उठाया। ओक्टेविया पुनः खिलखिला कर हँस पड़ी।

कुछ क्षणों तक फिर सन्नाटा रहा। सहसा मि० चाइल्ड ने पूछा—यहाँ आप लोग बड़ा दिन कैसे मनाते हैं?

"कम से कम हम लोगों का बड़ा दिन तो बहुत ही मज़ेदार होता है!"—मि० बर्क ने कहा।

"वह कैसे?"

"हमारा बड़ा दिन यहाँ के किसी देहात में व्यतीत होता है। बड़ा आनन्द आता है।"

"तब तो मैं भी तुम्हारे साथ ही बड़ा दिन मनाऊँगा।"

"बड़ी ख़ुशी की बात है। तुम्हें यहाँ के देहात की सैर भी करा देंगे।"

"मैं भी यहाँ की सब बातें देखना चाहता हूँ।"

"सो तो देखनी ही चाहिए। तुम्हें वहाँ शिकार भी खेलायेंगे।"

"ओहो! तब तो बड़ा आनन्द रहेगा। मि० शोर (डि० मैजिस्ट्रेट) भी जाते हैं क्या?"

"उनका बड़ा दिन भी बहुधा देहात में ही होता है, परन्तु हम लोगों से अलग। वह भी शायद तुम्हें अपने साथ ले जाना चाहें।"

"मैं उसके साथ नहीं जाऊँगा। बड़ा मनहूस आदमी है, बिल्कुल भीगा कम्बल।"

"बेचारे क्या करें, रञ्जीदा रहते हैं। जब से उनकी पत्नी का देहान्त हो गया तब से यह दशा हो गई, अन्यथा आदमी हँसमुख था।"—ओलीविया बोली।

"ख़ैर हँसमुख तो मि० शोर कभी भी नहीं रहे। वह प्रकृति से ही गम्भीर रहने वाले व्यक्ति हैं। परन्तु हाँ, जैसी आजकल दशा है, वैसे नहीं रहते थे। आजकल तो उनकी अजीब हालत हो गई है। हर समय चिन्तित से रहते हैं।"

"अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते थे क्या?"—चाइल्ड ने पूछा।

"ऐसा कुछ विशेष प्रेम भी नहीं था।"—ओलीविया ने मुँह बनाकर कहा।

"प्रेम तो ख़ैर था ही; परन्तु साथ ही एक जीवन-संगिनी भी तो थी। अब तो बेचारे बिलकुल अकेले रह गये। अपना दुःख-दर्द कहें तो किससे कहें?"—मि० बर्क ने कहा।

"हाँ, इस देश में तो बिलकुल अकेले हो गये। देश में होते तो यह बात न होती।"—मि० चाइल्ड बोले।

"वहाँ तो शायद अब तक दूसरा विवाह भी हो जाता।"—ओली-विया ने कहा।

"तो यहाँ कौन रोकता है।"—चाइल्ड ने पूछा।

"यहाँ उतनी लड़कियाँ कहाँ हैं? जो थोड़ी बहुत हैं वे शायद उन्हें पसन्द नहीं।"

ओक्टेविया पर एक रहस्यपूर्ण दृष्टि डालते हुए चाइल्ड ने कहा—तब तो उनकी पसन्द बहुत विचित्र मालूम होती है।

ओक्टेविया ने चाइल्ड की बात का मर्म समझ कर मुँह बिच-काया।

मि० चाइल्ड पुनः बोले—शायद लड़कियाँ ही उन्हें पसन्द न करती हों।

ओक्टेविया बोल उठी—उस मनहूस को कौन हतभागी पसन्द करेगी?

ओक्टेविया की माता हँस पड़ी। हँसते हुए बोली—उसे सब से अधिक यदि कोई ना पसन्द करता है तो वह ओक्टेविया है।

"मुझे तो उसकी शकल से नफ़रत है—जैसे आँखें टिमटिमाता हुआ मेंढक!"

इस पर सब हँस पड़े।

कुछ देर तक इसी प्रकार की बातें होती रहीं। इसके पश्चात् मि० चाइल्ड बोले—अच्छा तो आज्ञा चाहता हूँ।

"कहाँ जाओगे?"—मि० बर्क ने पूछा।

"जाऊँगा कहाँ! बँगले जाऊँगा। और ठिकाना ही कहाँ है!"

"तो फिर क्या करोगे जाकर। यहीं खाना, इसके पश्चात् गोल्फ़ खेलने चलेंगे। आजकल दोपहर में गोल्फ़ बड़ा आनन्ददायक होता है।"

'वाह वाह! तब फिर क्या कहना है; लेकिन मेरे खानसामा को फ़ोन करा दीजिए कि खाना न बनाये।'

मि० बर्क ने अर्दली को बुला कर कहा—"देखो, जएट साहब के खानसामा को फोन कर दो कि साहब खाना नहीं खाएगा।"

"शाम को सिनेमा भी चलियेगा क्या?" चाइल्ड ने पूछा।

"हाँ! हाँ! अवश्य!"

"मेरा बड़ा सौभाग्य था जो आप यहाँ पर मौजूद हैं, अन्यथा तबीयत ऊब जाती।"

"हाँ, नये आदमी के लिए यह मुसीबत तो अवश्य होती है। यदि कोई बड़ा स्टेशन मिल गया तो ख़ैर, अन्यथा बड़ी परेशानी रहती है।"

(२)

शाम के ७ बजे मिस्टर डेविड चाइल्ड अपनी कार लेकर मि० बर्क के यहाँ पहुँचे। मि० बर्क घर पर उपस्थित नहीं थे। मिसेज़ बर्क ने मि०

चाइल्ड का स्वागत किया। ओक्टेविया घर पर मौजूद नहीं थी।

कुछ क्षणों तक इधर-उधर की बातें करने के पश्चात् मि० चाइल्ड ने पूछा—आज ओक्टेविया कहाँ है?

"ओक्टेविया अभी आती होगी। यहीं तक गई है।"

फिर दोनों बातें करने लगे। कुछ क्षणों पश्चात् ओक्टेविया आ गई। मि० चाइल्ड को देख कर उसने मुस्कराते हुए कहा—हलो!

मि० चाइल्ड ने उठ कर ओक्टेविया का अभिवादन किया!

मि० चाइल्ड ने कहा—मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। क्या घूमने चलोगी?

"हाँ! हाँ! यदि माता जी को मेरी आवश्यकता न हो?"—यह कह कर ओक्टेविया ने माता की ओर देखा।

मिसेज़ बर्क बोलीं—मेरा तो कोई काम नहीं है।

"तो पाँच मिनट में तैयार होती हूँ।"— यह कह कर ओक्टेविया चली गई।

कुछ देर पश्चात् वह कपड़े बदल कर आ गई।

मिसेज़ बर्क बोलीं—देर मत करना, भोजन के समय आ जाना।

मि० चाइल्ड बोल उठे—भोजन के लिए आप इनकी प्रतीक्षा न कीजियेगा।

"अच्छा तो क्या आज आपके यहाँ इसका निमन्त्रण है?"—मिसेज़ बर्क ने मुस्कराते हुए पूछा।

"हाँ! कुछ ऐसी ही बात है।"—मि० चाइल्ड ने उत्तर दिया। दोनों आकर गाड़ी पर बैठे। मि० चाइल्ड स्वयम् ही कार ड्राइव कर रहे थे। अतएव दोनों आगे की सीट पर बैठे।

"कहाँ चलोगी?"—डेविड ने पूछा।

"मैं क्या जानूँ! मैं तो तुम्हारे साथ हूँ।"

"अच्छा तो पार्क चलें ?"

"जैसी इच्छा !"

पार्क पहुँच कर डेविड ने कार एक किनारे खड़ी कर दी और दोनों व्यक्ति घास के लान पर टहलने लगे। कुछ देर तक दोनों मौन टहलते रहे। सहसा डेविड ने पूछा—तुम्हारा यहाँ जी लगता है ?

"हाँ, जी तो लगता है, परन्तु कभी-कभी घर (इङ्गलैण्ड) की बड़ी याद आती है। यद्यपि घर की अपेक्षा यहाँ सुख अधिक है।"

"मेरा तो यहाँ अभी जी नहीं लगता। तुम लोगों की वजह से दिल बहला रहता है; लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि अब जी लगने का कारण उत्पन्न हो गया है।"

"कौन-सा कारण ?"

डेविड ने ओक्टेविया पर रहस्यपूर्ण दृष्टि डाली। ओक्टेविया उस दृष्टि का तात्पर्य समझ कर कुछ शर्मा गई और बात टालने के लिए बोली—मेरा जी भी पहले ऐसा ही घबराता था।

"मैं तो जहाज़ पर रास्ते भर यही सोचता आया कि कैसे क्या होगा ! हिन्दुस्तान की बाबत सुन तो बहुत कुछ रखा था। परन्तु सुनने और देखने में बड़ा अन्तर है।"

"क्यों मि० चाइल्ड···?"

"मुझे मि० चाइल्ड मत कहो, डेविड कहो और मैं भी तुम्हें ओक्टेविया कहूँगा।"

अंगरेज़ों में दो नाम होते हैं। एक तो क्रिश्चियन नेम (व्यक्तिगत नाम) और दूसरा सर नेम (पैतृक नाम) होता है। साधारण परिचय में परस्पर सर नेम का ही व्यवहार होता है। और सर नेम के पहले मिस्टर, मिसेज़ या मिस लगाना आवश्यक होता है। जब घनिष्ठता हो जाती है तब व्यक्तिगत नाम से सम्बोधन किया जाता है। अतएव किसी

को व्यक्तिगत नाम से सम्बोधित करना उसके प्रति अपनी घनिष्ठता प्रकट करना समझा जाता है। मि० चाइल्ड का व्यक्तिगत नाम डेविड था और चाइल्ड पैतृक नाम था। इसी प्रकार मिस बर्क का व्यक्तिगत नाम ओक्टेविया था ओक्टेविया मुस्करा कर बोली—"जैसी तुम्हारी इच्छा!"

"हाँ तो डेविड! तुम्हारे वंश में पहले भी कोई हिन्दुस्तान आ चुका है?"

"मेरे बाबा यहाँ फ़ौज में रह गये हैं।"

"उनका क्या नाम है? अभी जीवित हैं?"

"नाम चार्ल्स चाइल्ड। हाँ अभी जीवित हैं। उन्हीं के कहने से तो मैंने यहाँ आना स्वीकार किया। अन्यथा मेरी तो यहाँ आने की इच्छा नहीं थी। उन्होंने कहा—'डेविड! हिन्तुस्तान बड़ा सुन्दर देश है। वहाँ तुम्हें बहुत सी नई बातें मालूम होंगी।' उनके कहने से ही मैं यहाँ आया हूँ।"

"बहुत ठीक! मुझे विश्वास है कि तुम्हें यहाँ आकर पछताना न पड़ेगा।"

"यह विश्वास तो मुझे भी हो गया है।" यह कहकर डेविड ने पुनः ओक्टेविया को रहस्यपूर्ण दृष्टि से देखा। इस बार ओक्टेविया ने अपना वाक्य कहने के पश्चात् सिर झुका लिया था अतएव वह डेविड की दृष्टि नहीं देख सकी।

"उन्होंने एक बात और कही थी।"—डेविड ने कहा।

"वह क्या?"

"उन्होंने कहा था कि यहाँ के···उसे क्या कहते हैं, देखो याद नहीं आता। ऊँ···फ़क़ीर! फ़क़ीर! यहाँ कोई फक़ीर होते हैं?"

"फ़क़ीर लोग उन्हीं को कहते हैं जो भीख माँगते हैं। वे तो यहाँ असंख्य हैं।"

"लेकिन बाबा का मतलब भीख माँगने वालों से नहीं था। वह तो कुछ और ही बताते थे। वह तो कहते थे कि इन फ़क़ीरों में आध्यात्मिक शक्ति होती है।"

"अच्छा अब मैं समझ गई। उनका तात्पर्य साधारण फ़क़ीरों से नहीं था।"

"तो वे क्या कोई दूसरे होते हैं?"

"नहीं, होते तो सब कमबख़्त एक से ही हैं। मुझे तो उनमें आज तक कोई अन्तर ही न दिखाई पड़ा, लेकिन कुछ पीले और लाल कपड़े पहने होते हैं। उनमें सुनते हैं कि आध्यात्मिक शक्ति होती है, लेकिन मैंने तो आज तक किसी में ऐसी शक्ति पाई नहीं।"

"पता नहीं बाबा के मस्तिष्क में यह बात कैसे भर गई?"

"हमारे नौकरों ने और अन्य हिन्दुस्तानियों ने भी हमारे मस्तिष्क में उनकी बाबत बड़ी-बड़ी बातें भरने का प्रयत्न किया; परन्तु हमने तो उन पर कुछ ध्यान नहीं दिया।"

"तो वह कुछ नहीं! बाबा को किसी ने यों ही डरा दिया होगा। बाबा हैं भी कुछ दुर्बल विश्वासी! किसी दिन, किसी से सामना हो गया तो मैं उसकी आध्यात्मिक शक्ति देखूँगा।"

"यहाँ आये हो तो हो ही जायगा।"

बिजली के खम्भे के सामने अपनी रिस्टवाच देखकर डेविड ने कहा—अब चलना चाहिये।

"कहाँ चलोगे?"

"भोजन करने!"

"घर पर?"

"नहीं, होटल में!"

"दोनों आकर कार पर बैठे और होटल की ओर चल दिये।"

(३)

बड़ा दिन था। एक बड़े गाँव के आम के बाग़ में पुलिस सुपरिन्टे-न्डेन्ट मि० बर्क का कैम्प था। तीन-चार बड़े-बड़े डेरे और चार-पाँच छोलदारियाँ लगी हुई थीं। गाँव के ज़मींदार की ओर से रसद का प्रबन्ध था। सवेरे ८ बजे से ही शहर से लोगों का आना आरम्भ हो गया था। शहर के कुछ रईस तथा पुलिस-कर्मचारी अपनी-अपनी डालियाँ लेकर उपस्थित हो रहे थे। अन्य आस पास के गाँवों से भी ज़मींदार तथा थानेदार लोग कप्तान साहब के लिए डालियाँ लाये थे।

मि० बर्क अपनी पत्नी, कन्या तथा मि० चाइल्ड के साथ नाश्ता कर रहे थे। नाश्ता करने के पश्चात् मि० बर्क बोले—'अच्छा तो अब मैं जाकर ज़रा लोगों से मिल लूँ, फिर शिकार खेलने चलेंगे। आओ ओलीविया!'

मिसेज़ बर्क और मि० बर्क दोनों साथ-साथ बाहर निकले। एक ओर पुलिस-कर्मचारी क़तार बाँधे और हाथ में फूल-मालाएँ लिए खड़े थे। उनमें से प्रत्येक के सामने भूमि पर उनकी डाली रक्खी हुई थी। किसी में शाक-सब्ज़ी, फल इत्यादि, किसी में केक इत्यादि, किसी में मुर्ग़ियाँ और अण्डे और किसी में सूटकेस-अटेची इत्यादि। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार का सामान था। कप्तान साहब तथा मेम साहब जैसे ही क़तार के सामने पहुँचे, उनके गले में फूल-मालाएँ पड़ने लगीं। क़तार के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते इतनी फूल-मालाएँ डाली गईं कि दोनों के मुख मालाओं में लगभग छिप गये। इसके पश्चात् बीच में खड़े होकर दोनों ने पुलिस वालों की सलामी ली। एक थानेदार साहब शायर थे, वह कप्तान साहब की प्रशंसा में शायरी बनाकर लाये थे, वह उन्होंने सुनाई। साहब ने एक छोटी-सी वक्तृता दी जिसमें पुलिस के प्रति शुभकामना प्रकट की गई थी। इसके पश्चात् दोनों पुनः डेरे में लौट आये। मि०

चाइल्ड दोनों का हुलिया देख कर हँसते हुए बोले—आप दोनों तो फूलों से दबे जा रहे हैं।

मि० बर्क मालाएँ गले से निकाल कर रखते हुए बोले—ओह ! जी घबरा गया। कभी-कभी फूल भी दूभर हो जाते हैं।

मिस बर्क तथा मिसेज़ बर्क डालियों का सामान देखने और उन्हें रखवाने चली गईं। इधर मि० बर्क ने अर्दली से कहा—हम लोग शिकार को जायगा। ठाकुर साहब से बोलो।

अर्दली 'बहुत अच्छा हुज़ूर' कह कर चला गया ! इधर दोनों व्यक्ति अपनी-अपनी बन्दूकों का निरीक्षण करने लगे।

पन्द्रह मिनट में दो हाथी और आठ-दस गाँवों के चौकीदार आ गये।

दोनों व्यक्ति एक-एक हाथी पर सवार होकर एक ओर चले, साथ में चौकीदार लोग चल रहे थे।

मि० बर्क अपने महावत से बोले—देखो, जिधर पानी का चिड़िया हो उधर चलो।

'बहुत अच्छा हुज़ूर।'—कहकर महावत ने हाथी की दिशा बदली। मि० बर्क के पीछे मि० चाइल्ड का हाथी था। मि० बर्क घूमकर मि० चाइल्ड से बोले—पहले जल-पक्षियों का शिकार ठीक रहेगा न ?

'जब तक शिकार मिलता रहे तब तक सब ठीक है।'—मि० चाइल्ड ने उत्तर दिया।

थोड़ी दूर चलने के पश्चात् एक झील दृष्टिगोचर हुई। साहब झील देखकर बोले—बस रोक दो, यहाँ उतरेगा।

दोनों व्यक्ति हाथी से उतरे। केवल दो चौकीदारों को साथ लेकर दोनों झील की ओर चले। झील के निकट पहुँचने पर मुर्ग़ाबियों का झुण्ड दिखाई पड़ा। यह देखते ही दोनों बैठ गये और हाथ के इशारे

से चौकीदारों को भी बैठ जाने का संकेत किया। कुछ देर तक बैठे रहने के पश्चात् दोनों झुके हुए आगे बढ़ने लगे। जब यथेष्ट निकट पहुँच गये तो दोनों ने एक साथ ही बन्दूकें दाग़ीं। बन्दूकें छूटते ही मुर्ग़ाबियों का दल भर्र से उड़ा। दोनों ने पुनः फ़ायर किये। दल में से दो मुर्ग़ाबियाँ उलटती पलटती पुनः जल में गिरीं। शेष दल काँव-काँव करता एक ओर निकल गया। दोनों ने चौकीदारों से संकेत किया। दोनों चौकीदार दौड़ कर गये। ये दोनों भी धीरे-धीरे उसी ओर चले। चौकीदारों ने पानी में घुस कर पाँच मुर्ग़ाबियाँ निकालीं। इनमें से चार तो मर गई थीं, एक फड़फड़ा रही थी। फड़फड़ाती हुई मुर्ग़ाबी चौकीदार के हाथ में पंजा मार कर छुटने का प्रयत्न कर रही थी। चौकीदार गर्दन पकड़ कर उसे लटकाये था। पंजों की मार से भयभीत होकर उसने मुर्ग़ाबी छोड़ दी। मुर्ग़ाबी भूमि पर छटपटाने लगी। उस मुर्ग़ाबी का केवल एक बाज़ू (पखना) टूट गया था, इस कारण उड़ नहीं पाती थी, अन्यथा उसके अन्य कहीं कोई चोट नहीं थी। मि० चाइल्ड ने दौड़ कर मुर्ग़ाबी को पकड़ा और अपनी जेब से चाक़ू निकाल कर उसकी गर्दन काट दी और उसे भूमि पर छोड़ दिया। मुर्ग़ाबी दो तीन मिनट तक तड़प कर ठण्डी हो गई।

मि० चाइल्ड के मुख पर इस समय बड़ी ही प्रसन्नता थी। वह बोले—हिन्दुस्तान निश्चय ही स्वर्ग है। यह आनन्द घर में कहाँ।

साहब ने चौकीदार को संकेत किया। वह मुर्ग़ाबियाँ लेकर दौड़ा हुआ हाथियों की ओर गया और मुर्ग़ाबियाँ वहाँ छोड़ कर पुनः आ गया। दोनों साहब झील के दूसरी ओर चले। कुछ दूर चलने पर उन्होंने चहों को झील के किनारे चरते देखा। दोनों वहीं दबक गये। चौकीदार भी बैठ गये। इसी प्रकार दबके हुए दोनों झील की ओर बढ़े और यथेच्छा निकट पहुँच जाने पर दोनों ने फ़ायर किये। तीन चहे तो फड़फड़ाने लगे

और शेष तीन-चार उड़ गये। चौकीदार इन्हें भी उठा लाये। इनमें से एक जीवित था चौकीदार ने उसकी गर्दन मरोड़ कर उसे ख़त्म कर दिया। मि० चाइल्ड ने बहुत ही प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—यहाँ तो शाम तक शिकार से एक गाड़ी भरी जा सकती है। इधर हिरन भी तो मिलते होंगे?

"बहुत!"

"तो हिरन का शिकार होना चाहिए।"

"अच्छी बात है।"

दोनों हाथियों के पास लौट आये और हाथियों पर सवार होकर हिरन की तलाश में चले।

(४)

कुछ दूर चलने पर खेतों से घिरा हुआ एक मैदान दिखाई पड़ा। इस मैदान के बीचोबीच में हिरनों का एक झुण्ड था। कुछ बैठे हुए थे, कुछ दुम हिला-हिला कर इधर-उधर टहल रहे थे। दो नर परस्पर सींग लड़ा रहे थे। झुण्ड अभी काफ़ी दूर पर था। अतएव महावतों ने जल्दी से हाथियों को दूसरी ओर घुमा दिया और पास ही एक बाग़ में आकर रुक गये। दोनों साहब उतर पड़े। अब दोनों ने दोनली बन्दूकें तो दो चौकीदारों को दे दीं और राइफ़लें लेकर आगे बढ़े। चार चौकीदार उनके पीछे पीछे चले। सब लोग वृक्षों और ज्वार के खेतों की आड़ पकड़े हुए मैदान के तट पर पहुँच गये।

मि० बर्क ने धीमे स्वर में मि० चाइल्ड से कहा—जो दोनों लड़ रहे हैं इनमें से दाहिनी तरफ़ का तुम लो, बाईं तरफ़ वाले को मैं लेता हूँ।

"ओ० के० (बहुत ठीक)"—मि० चाइल्ड ने उत्तर दिया।

दोनों ने एक साथ ही फ़ायर किये। फ़ायर करने के आधे सेकण्ड पूर्व दाहिनी ओर वाला घुटनों के बल गिर गया। अतएव वह तो बच गया, परन्तु बाईं ओर वाला उछल कर गिरा और भूमि पर लोटने लगा। दल के शेष हिरन फ़ायर होते ही चौकड़ियाँ भरकर भागे। कुछ दाहिने कुछ बायें और कुछ सामने। इस प्रकार जिधर जिसका मुँह उठा उसी ओर चौकड़ियाँ भरता हुआ क्षणमात्र में अदृश्य हो गया। मि० चाइल्ड तथा मि० बर्क चौकीदारों सहित दौड़कर गिरे हुए हिरन की ओर चले। हिरन चिल्लाता हुआ उठने का प्रयत्न कर रहा था; परन्तु उठ नहीं पा रहा था। चौकीदारों ने जाकर उसे दबोच लिया। मि० बर्क ने एक शिकारी चाकू जेब से निकाल कर दिया और कहा—"इसका गला काट दो!" अतएव एक चौकीदार ने हिरन के सींग पकड़ लिये और दूसरे ने उसकी छाती पर चढ़कर उसका गला रेत दिया। हिरन कुछ देर तक तड़प कर निश्चल हो गया। मि० चाइल्ड को अपना वार ख़ाली जाने का अफ़सोस था। यह बात समझ कर मि० बर्क ने कहा—चिन्ता मत करो, फिर मौक़ा मिलेगा।

"एक ग़लती हो गई—।" मि० चाइल्ड ने कहा।

"वह क्या?"—मि० बर्क ने पूछा।

"हम दोनों को एक साथ नहीं रहना चाहिए था। यदि मैं इधर रहता तो ठीक था। तुम्हारे फ़ायर करने के बाद जो हिरन इधर से भाग कर जाते उन्हें मैं गिराता।"

"हाँ! परन्तु जो हुआ सो ठीक है। वह तो संयोगवश तुम्हारा निशाना चूक गया, अन्यथा मामला ठीक ही था।"

चौकीदारों ने हिरन को टाँग लिया और सब लोग उस बाग़ की ओर चले जहाँ हाथी खड़े थे। ये लोग थोड़ी ही दूर चले होंगे कि सामने से एक संन्यासी आता दिखाई पड़ा। संन्यासी काषाय वस्त्र पहने था—

एक लम्बी अलफ़ी, सिर पर एक कपड़ा लपेटे, कन्धे पर कम्बल, एक हाथ में दण्ड, दूसरे में कमण्डलु, पैरों में केनवेस का जूता।

मि० चाइल्ड ने संन्यासी को देख कर मि० बर्क से पूछा—यह कौन है?

"यह एक प्रकार का फ़क़ीर है।"

"अच्छा!" कहकर मि० चाइल्ड ने संन्यासी को ध्यानपूर्वक देखा।

कुछ क्षण में संन्यासी बिल्कुल निकट आ गया। सामने आने पर वह ठिठुक गया और अङ्गरेज़ी में बोला—'अहिंसा के प्रवर्त्तक ईसामसीह के अनुयायी उस महापुरुष का जन्म-दिवस निर्दोष मूक प्राणियों की हत्या करके मनाते हैं और फिर भी अपने को सभ्य कहने की धृष्टता करते हैं!' इतना कहकर संन्यासी ने अट्टहास किया। संन्यासी की बात सुन कर मि० बर्क और चाइल्ड कुछ क्षणों के लिए स्तम्भित हो गये। संन्यासी गम्भीर हो गया और आकाश को देख कर बोला—'आह! मैं देख रहा हूँ वह महापुरुष ईसाइयों के इस कृत्य पर शर्म से गर्दन झुकाये आँसू बहा रहा है।' संन्यासी की आँखों से आँसुओं की दो धाराएँ निकल कर उसके कपोलों पर दिखाई दीं। संन्यासी ने गले में पड़े हुए वस्त्र से आँखें पोंछी और चल दिया। मि० बर्क तथा मि० चाइल्ड दोनों हतबुद्ध होकर उसकी ओर देखते रहे। जब संन्यासी आँखों से ओझल हो गया तब मि० बर्क बोले—यह पागल मालूम होता है।

मि० चाइल्ड कुछ न बोले, वह चिन्ता-मग्न थे। दोनों बाग़ की ओर चले। हाथियों के निकट पहुँच कर मि० बर्क ने मि० चाइल्ड से पूछा—अब किधर चलना चाहिए?

"मैं तो कैम्प जाऊँगा।"

"क्या? शिकार नहीं खेलोगे?"

"नहीं!"—मि० चाइल्ड ने गम्भीरता-पूर्वक उत्तर दिया। इसके

पश्चात् उन्होंने कहा—हिरन पर मेरा निशाना चूक गया। इस बात से अब मुझे हार्दिक प्रसन्नता है।

"तुम उस पागल की बातों में आ गये!"

"यदि वह पागल है तो संसार में कोई भी सही दिमाग़ का नहीं है।"—मि० चाइल्ड ने कहा।

"डेविड! डेविड! होश, में आओ! एक आवारा विधर्मी की बकवास पर इतनी भावुकता!"

"मि० बर्क, विधर्मी वह नहीं है, वह सच्चा ईसाई है। विधर्मी हम हैं। एक विधर्मी की प्रभु पर इतनी श्रद्धा। जिस समय उसने प्रभु का नाम लिया उस समय उसके मुख पर कितनी श्रद्धा तथा भक्ति थी? आह! यदि वैसी ही श्रद्धा-भक्ति हम लोगों में होती। मुझे तो वह प्रभु की प्रतिमूर्ति ही दिखाई पड़ा।"—इतना कह कर मि० चाइल्ड ने बन्दूक भूमि पर फेंक दी और दोनों हाथों से मुँह ढाँप कर उच्च स्वर से रोना आरम्भ किया।

मि० बर्क हक्का-बक्का हो गये। उन्होंने डेविड को अपने बाहुपाश में लेकर कहा—यह क्या पागलपन है, डेविड! इतनी भावुकता अच्छी नहीं होती। चलो, केम्प चलें। शिकार हो चुका।

कुछ क्षण में डेविड शान्त हुआ और आँसू पोंछता हुआ हाथी पर बैठ गया। मि० बर्क भी अपने हाथी पर बैठे और केम्प की ओर चलने का हुक्म दिया।

केम्प में आकर मि० चाइल्ड ने किसी से कुछ बात नहीं की। अपने अर्दली को सामान लाने के लिए कहकर वह अपनी कार पर बैठे और शहर की ओर चल दिये।

मिस बर्क ने पिता से पूछा—क्या बात हुई पिता जी, क्या आपसे कुछ झगड़ा हो गया?

"नहीं ! मुझसे झगड़ा क्यों होता ?"—यह कहकर मि० बर्क ने सब वृत्तान्त सुनाया।

मिस बर्क बोलीं—और मुझसे तो कहते थे कि मुझे कोई फ़क़ीर मिला तो उसे समझूँगा।

"अच्छा ! यह किस बात पर कहा था ?"

मिस बर्क ने, मि० चाइल्ड के बाबा ने मि० चाइल्ड से जो कहा था वह कह सुनाया।

मि० बर्क मुस्करा कर बोले—अरे तभी ! ख़ैर कोई बात नहीं, दो-चार दिन में ठीक हो जायगा। बड़ा भावुक आदमी है।

मिस बर्क बोली—ऐसे भावुक पागल से जो लड़की विवाह करेगी उसका जीवन तो संकट में ही रहेगा।—यह कहकर मिस बर्क ने मुँह बिचकाया।

मिसेज़ बर्क बोलीं—बिल्कुल ठीक बात है।

* * *

मि० चाइल्ड इस्तीफ़ा देकर इङ्गलैण्ड लौट आये हैं और उन्होंने आजीवन अविवाहित रहने का व्रत लेकर अपना जीवन प्रभु ईसामसीह की सेवा के लिए अर्पित कर दिया। इस समय वह एक गिरजाघर के छोटे पादरी हैं। वह नित्य सवेरे हिन्दुस्तान के उस संन्यासी को, जो उन्हें बड़े दिन पर शिकार खेलते हुए मिला था, अपना गुरु मानकर उसकी काल्पनिक मूर्ति के सामने अपना मस्तक झुकाते हैं।

प्रमाद्

"बेरा !"

"हुज़ूर ।"

संध्या के चार बज चुके थे। बँगले के बरामदे में एक बाईस वर्षीय महिला नंगे सिर कुर्सी पर बैठी थीं। सिर के बाल अँग्रेज़ी ढंग के पट्टों की भाँति कटे हुए थे। शरीर पर साड़ी-जम्पर सुशोभित थे और पैरों में ऊँची एँड़ी का जूता था। उनके सामने मेज़ पर चाय की ट्रे रक्खी हुई थी। प्याला हाथ में था। प्याला ट्रे में रखकर मेज़ पर रक्खे हुए तौलिये से ओठों को छू कर उन्होंने बेरा को पुकारा। बेरा के आने पर उन्होंने कहा—"ले जाओ। आज चाय में कड़ुवाहट कैसी है ?"

"चाय तो वही है जो रोज़ बनती है।"

"बनाने में कुछ कसर हो गई होगी।"

"रोज़ ही की तरह आज भी बनाई है।"

"न जाने क्या बात है।" इतना कह कर उन्होंने मेज़ पर रक्खा हुआ अँग्रेज़ी अख़बार उठा लिया और पढ़ने लगीं।

थोड़ी देर में बंगले के 'पोर्च' में एक निःशब्द कार आकर रुकी। एक सूटेड-बूटेड महाशय, जिनकी वयस ३५,३६ के लगभग होगी, कार से उतरे। ड्राइवर ने द्वार बंद किया। उसकी आवाज़ सुनकर महिला ने अख़बार से दृष्टि उठाकर कार की ओर देखा और आगन्तुक को देखकर पुनः अख़बार पर दृष्टि जमा ली। आगन्तुक आकर महिला के निकट ही कुर्सी पर बैठ गया और बोला—"क्या हो रहा है ? चाय पी चुकीं ?"

महिला अख़बार पर दृष्टि जमाये हुए ही बोली—"हाँ तुम्हारी प्रतीक्षा करके अभी अभी पी है। आज तुम्हें देर हो गई ?"

"हाँ आज कुछ देर हो गई। बेरा !"

"हुज़ूर !"

"चाय लाओ। आज तो अख़बार में कुछ नहीं है।"

"क्या मतलब ?" महिला ने माथा सिकोड़ कर कहा।

"कोई ख़ास ख़बर नहीं है।"

"तो क्या अख़बार न पढ़ा जाय ?"

"नहीं, मेरा यह मतलब नहीं है।"

"तुम्हारी सदा ऐसी ही ऊलजुलूल बातें होती हैं। मिल की मैनेज़री कैसे करते हो—यही मुझे आश्चर्य है।"

पुरुष झेंपी हुई हँसी हँसते हुए बोला—"मेरे सम्बन्ध में तुम्हें कोई आश्चर्य तो है—यह प्रसन्नता की बात है।"

इसी समय बेरा चाय ले आया। पुरुष चुपचाप चाय पीने लगा।

चाय-पान से निवृत्त होने पर पुरुष ने बेरा से ट्रे उठा ले जाने को कहा। बेरा के चले जाने पर महिला ने पूछा—"चाय कैसी थी ?"

"अच्छी थी—क्यों ?"

"स्वाद में कुछ अन्तर नहीं जान पड़ा ?"

"नहीं ! क्यों क्या मामला है ?"

"मामला कुछ नहीं—आज कुछ तलख़ी-सी है।"

"मुझे तो नहीं जान पड़ी।"

"तुम्हें क्यों जान पड़ेगी ! कुलियों के बीच में रहते-रहते तुम्हारी भी उन्हीं जैसी प्रकृति हो गई है।"

"शायद !" पुरुष ने हँसते हुए कहा।

"शायद नहीं, सच बात है।"

"सच ही सही।"

"सही! तुम अपनी कमज़ोरी कभी स्वीकार नहीं करते, यही तुम में बड़ा दोष है।"

"परन्तु माई डियर! कमज़ोरी होना तो स्वाभाविक है। प्रत्येक मनुष्य में कोई न कोई कमज़ोरी होती है।"

"जिन में कमज़ोरी होती है वे ही ऐसा कहते हैं।"

"कमज़ोरी सब में होती है।"

महिला ने अख़बार मेज़ पर पटक कर कहा—"सब में नहीं होती। यह बेवक़ूफ़ों का सिद्धांत है।"

पुरुष कुछ सहम कर बोला—"अच्छा नहीं होती है। जो तुम कहती हो वही ठीक है। मैं इस बात पर बहस और झगड़ा नहीं करना चाहता।"

"कर ही नहीं सकते!"

"हाँ कर भी नहीं सकता।"

कुछ क्षणों तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। सहसा पुरुष ने पूछा—"आज शाम के लिए क्या प्रोग्राम है?"

स्त्री जम्हुवाई लेकर बोली—"मैं तो सिनेमा जाऊँगी। और तुम?"

"मुझे तो एक सज्जन से मिलना है। सात बजे का समय उन्हें दिया है—उनकी प्रतीक्षा करूँगा।"

इसी समय बावर्ची आ गया और बोला—"शाम को खाना क्या बनेगा, हुज़ूर?"

महिला कुछ क्षणों तक सोचकर बोली—"रोग़नजोश बना लेना,—कबाब,—कोई एक सब्ज़ी,—गोभी या आलू मटर।"

पुरुष बोल उठा—"गोभी बना लेना।"

स्त्री बोली—"गोभी नहीं—आलू-मटर! गोभी खाते खाते मेरा जी ऊब गया।"

"परन्तु माई डियर! गोभी तो इधर कई रोज़ से नहीं बनी।"

"तो आज भी नहीं बनेगी।"

"जैसी इच्छा! आलू-मटर बना लेना। और पुडिङ्ग ज़रूर बनाना। और देखो खाना इस हिसाब से बनाना कि एक और आदमी की गुंजायश रहे।"

"वह कौन?" महिला ने माथा सिकोड़ कर पूछा।

"वही जो महाशय मिलने आवेंगे।"

"तो क्या वह खाना यहीं खाँयगे?"

"कोई निश्चय तो नहीं है; परन्तु यदि खाना खाने के समय तक रहे तो पूछना तो पड़ेगा ही।"

महिला ने कोई उत्तर न दिया। पुरुष अँगड़ाई लेकर बोला—"जाऊँ कपड़े बदल डालूँ!"

(२)

मिस्टर एस० सी० सिनहा एक काटन मिल के सहायक मैनेजर हैं। आपको बारह सौ रुपया मासिक वेतन मिलता है—साथ ही बंगला मुफ़्त है। जब से मि० सिनहा मिल के मैनेजर हुए हैं तब से उनके सारे ठाट-बाट अँग्रेज़ी हो गये हैं। इसके पहले वह हेडक्लर्क थे। जब तक वह हेडक्लर्क रहे तब तक उनमें कुछ हिन्दुस्तानियत भी रही, परन्तु एसिस-टेन्ट मैनेजर होते ही उनका रहन-सहन पूर्णतया साहबी हो गया। उनकी पत्नी 'शान्ता सिनहा' इंटरमीजियट क्लास तक पढ़ी हैं। मि० सिनहा सरल स्वभाव के आदमी हैं, परंतु शान्तादेवी का स्वभाव बहुत ही उग्र है। यहाँ तक कि उनके उग्र स्वभाव से मि० सिनहा भी डरा करते हैं। अत-एव शान्तादेवी पति को दाबे रहती हैं। घरेलू मामलों में शान्ता देवी का ही हुक्म चलता है।

एक दिन मिल से लौट कर मि० सिनहा ने पत्नी को एक चिट्ठी देते हुए कहा—"बुआ जी और फूफा जी आ रहे हैं।"

शान्तादेवी का चेहरा उतर गया, सशंकित होकर उन्होंने पूछा—"कब ?"

"कल शाम को।"

शान्तादेवी ने पत्र पढ़ा। पत्र पढ़ कर उसे मेज़ पर रखते हुए बोलीं—"ये लोग ख़ामख़ाह हमारी शान्ति को आघात पहुँचाते हैं।"

मि० सिनहा कुछ विस्मित होकर बोले—"इसमें शान्ति को आघात पहुँचाने की क्या बात है ? नाते-रिश्तेदार तो आते-जाते ही रहे हैं और रहेंगे।"

"उनका रहन-सहन आचार-विचार वही बाबा आदम के समय के दक़ियानूसी हैं।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। फूफा जी सुशिक्षित आदमी हैं—यद्यपि उनका रहन-सहन हिन्दुस्तानी ढङ्ग का है। उनके विचार भी काफ़ी उन्नत हैं। हाँ बुआ जी अभी काफ़ी पिछड़ी हुई हैं—और वे ऐसी ही रहेंगी। उनमें सुधार होना असंभव है।"

"इसी से तो कहती हूँ। वह बात-बात पर नाक-भौं चढ़ायेंगी, मुँह विचकायेंगी और मुझसे यह सहन न हो सकेगा।"

"वह हमारी बड़ी हैं और मेहमान भी होंगी—इसलिए उनकी बातों पर ध्यान न देना। जो कुछ वह कहें-सुने हँसी मज़ाक़ में टाल देना। थोड़े दिन रह कर चली जायँगी। थोड़े दिन के लिए तुम भी हिन्दु-स्तानियत ग्रहण कर लेना।"

"यह ढोंग मुझ से नहीं होगा। हाँ मैं उनकी बातें सहन करने का पूरा प्रयत्न करूँगी।"

दोनों कुछ क्षण तक मौन बैठ रहे।

सहसा शान्ता देवी बोलीं—"और तो सब निभ जायगा, पर बावर्ची का क्या होगा ?"

मि० सिनहा बोले—"हाँ बावर्ची की समस्या ज़रा कठिन है। बुआ जी की बात तो बहुत दूर है, फूफा जी भी शायद मुसलमान बावर्ची के हाथ का बनाया खाना न खायेंगे।"

"यही तो कठिनता है।"

"एक कठिनता और भी हैं। उनके लिये तो हिन्दू रसोइये का प्रबंध किया जा सकता है, परन्तु उन्हें यदि यह पता लग गया कि हम लोग मुसलमान बावर्ची का बनाया हुआ भोजन खाते हैं तो वे हमारे हाथ का छुआ पानी भी न पियेंगे।"

"केवल इतना ही नहीं वे यहाँ ठहरना भी पसंद न करेंगे।"

"हाँ ! हाँ। ठीक कहती हो।"

"तब क्या होना चाहिए।"

मि० सिनहा कुछ क्षणों तक विचार करके बोले—"ऐसा करो कि जब तक वे लोग रहें, इस बावर्ची को अलग रक्खो और किसी हिन्दू को—।"

शान्तादेवी मुँह बना कर बोल उठी—"यह तो बड़ी कमज़ोरी की बात होगी।"

"तो फिर किया क्या जाय ? आख़िर उनकी भावना का सम्मान भी तो करना पड़ेगा।"

"यदि ऐसा किया जाय कि इसी बावर्ची को हिन्दू कहकर इसी से काम लिया जाय।"

"यह तो विश्वासघात होगा। जब उन्हें परहेज़ है तो वह चाहे हमारे दृष्टिकोण से ठीक हो या ग़लत हो परन्तु हमें यह अधिकार नहीं है कि हम उन्हें धोखा दें। इससे अच्छा तो यह है कि हम उतने समय के लिए

किसी हिन्दू को रख लें।"—मिस्टर सिनहा ने कहा।

"हिन्दू खाना बनाना क्या जाने!"

"ख़ैर यह बात तो मैं मानने के लिए तैयार नहीं हूँ। हिन्दू भी अच्छा खाना बना सकता है, पर ऐसे हिन्दू कम मिलेंगे और तनख्वाह अधिक लेंगे। वैसे खाना हमारी बुआ जी भी अच्छा बनाती हैं।"

"ख़ाक बनाती हैं। अरहर की दाल बनाने में कौन बड़ी कारीगरी है!"

"कुछ न कुछ कारीगरी तो प्रत्येक चीज़ बनाने में होती है। परन्तु बुआ जी गोश्त भी अच्छा बना लेती हैं।"

"हाँ कलिया अच्छा बनाती होंगी।" शान्तादेवी व्यंग्य से मुस्कराकर बोलीं।

"जो चीज़ें हम लोगों में बनाई जाती हैं वे ही बना सकती हैं। तुम कहो आमलेट बना लें, या मुर्ग़पुलाव बना लें, कटलेट, मटनचाप, पुडिङ्ग इत्यादि बना लें—तो ये चीज़ें तो नहीं बना सकती।"

"हाँ ख़ूब याद आया—आज आमलेट बनवाने चाहिएं—बेरा!"

बेरा के आने पर उससे कहा गया—"देखो! बावर्ची को बोलो कि आमलेट भी बना ले।"

"क्या कहूँ—यदि वे एक बार हमारे यहाँ का खाना खा लें तो जन्म भर याद रक्खें। मेरी तो इच्छा है कि मैं उन्हें खिलाऊँ, पर तुम कहते हो कि विश्वासघात होगा।"

"क्या न होगा?"

"मैं तो यह समझती हूँ कि जो गोश्त खाता है उसे हिन्दू-मुसलमान का परहेज़ न करना चाहिए। हाँ, जो गोश्त नहीं खाता उसका परहेज़ करना अनुचित नहीं है।"

"आख़िर क्या होना चाहिए।"

"मैं तो समझती हूँ कि उन्हें आने दो। हम उनसे साफ़ साफ़ कह देंगे कि हमारे यहाँ मुसलमान बावर्ची है; उनकी इच्छा होगी तो खांयगे अन्यथा उनके लिए कोई प्रबंध कर दिया जायगा—या बुआ जी स्वयम् बना लिया करेंगी।"

मि० सिनहा विवशतापूर्ण स्वर में बोले—"अच्छी बात है।"

(३)

दूसरे दिन नियत समय पर मि० सिनहा के फूफा जी आ गये। प्रथम साक्षात् होते ही फूफा जी तथा बुआ जी के हृदय पर पहला धक्का यह लगा कि शान्तादेवी ने फूफा जी से पर्दा नहीं किया। फूफा जी नई रोशनी को समझते थे अतएव उन्होंने तो इस धक्के को सह लिया पर बुआ जी विचलित हो गईं। उन्होंने एकांत होने पर शान्तादेवी से कहा—"बहू तू ने तो पर्दा-वर्दा सब फाड़ फेंका!"

शान्तादेवी मुँह बिचकाकर बोली—"अब आजकल परदे का चलन नहीं रहा बुआ जी, आजकल परदा करने वाली स्त्रियाँ गँवार समझी जाती हैं।"

बुआ जी अवाक् होकर शान्तादेवी का मुँह ताकने लगी; उन्होंने अभी तक पर्दा न करने वाली स्त्रियों की ही निन्दी सुनी थी—पर्दा करने वाली स्त्रियों की निन्दा सुनने का शायद यह पहला ही अवसर था।

इसके पश्चात् उनकी दृष्टि शान्तादेवी के केश पर पड़ी। उन्होंने पूछा—"तेरे बाल कैसे हो गये बहू?"

"यही आजकल का फ़ैशन है बुआ जी—अब चोटी और जूड़े का फ़ैशन नहीं रहा।"

"अरी ऐसे बाल तो मर्द रक्खा करते थे! मेरे बाबा के ऐसे ही बाल थे—इन्हें पट्टे कहते थे। अब औरतें रखने लगीं! हे भगवान!

इस युग में जो न हो जाय।"

शान्तादेवी घृणापूर्वक किंचित मुस्कराकर बोली—"ईडियट ! (सिड़ी)।"

"क्या ?" बुआ जी ने पूछा।

"जैसा समय हो वैसे ही चलना चाहिए। पुरानी बातों का रवाज अब नहीं रहा।"

"तुम्हारे यहाँ नहीं रहा तो तुम जानती हो कि दुनिया में नहीं रहा ?"

"हाँ, एक बात तो बताओ। तुम्हारे और फूफा जी के भोजन की बाबत क्या होगा ?"

"कैसा ? मैं समझी नहीं।"

"बात यह है कि हमारे यहाँ तो भोजन बनाने के लिए मुसलमान बावर्ची है—।"

"क्या !" बुआ जी ने आँखें फाड़कर पूछा।

"हाँ ! मुसलमान —।"

बुआ जी का सिर इस प्रकार एक दम झुक गया कि शान्तादेवी समझी कि बुआ जी को ग़श आ गया। शान्तादेवी ने आगे बढ़कर उन्हें सँभाला। बुआ जी की आँखें बंद थीं। शान्तादेवी ने उनका कंधा हिलाकर पुकारा—"बुआ जी ! बुआ जी !"

बुआ जी ने आँखें खोलीं। कुछ क्षणों तक वह स्थिर दृष्टि से शान्तादेवी को देखती रही, तत्पश्चात् एक दम से उठकर उस कमरे की ओर जिसमें वह ठहराई गई थीं यह कहती हुई भागी—"मैं कहाँ आ गई नरक में !"

शान्तादेवी के माथे पर बल पड़ गये—मुखमण्डल तमतमा उठा। "ओल्ड हेग ! (बुढ़िया ढुड्ढो)।" कहकर वह उठीं और कटपट

कटपट करती हुई मि० सिनहा के पास पहुँची। मि० सिनहा अपने फूफा जी से हँस हँस कर बातें कर रहे थे। शान्तादेवी को क्रोध में भरी हुई देख कर उनका चेहरा उतर गया। उन्होंने पूछा—"वेल माई डियर क्या बात है?"

"बात यह है कि क्या मेरे घर में ही लोग मेरा अपमान करेंगे?"

मि० सिनहा घबरा गये। फूफा जी भी सशंकित नेत्रों से शान्तादेवी को ताकने लगे। शान्तादेवी फूफा जी को सम्बोधित करके बोली—"देखिये फूफा जी! हम लोग पुराने आचार-बिचार के कायल नहीं हैं। हम लोग समय के अनुसार चलते हैं। इसमें चाहे कोई बुरा माने या भला इसकी हमें परवाह नहीं है। आपको मालूम होना चाहिए कि हमारे यहाँ मुसलमान बावर्ची है, हम लोग अँग्रेज़ी रहन-सहन रखते हैं। यदि आप को यह सब जानते हुए यहाँ रहना स्वीकार हो तो आपका स्वागत है—आप इसे बिल्कुल अपना घर समझ-कर जब तक इच्छा हो रहें। और यदि यह बात आप को पसंद नहीं है तो आप अपना इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हैं। परन्तु यदि कोई हमारी टीका-टिप्पणी करेगा या भला बुरा कहेगा, तो वह हम कदापि सहन न करेंगे। स्वर्ग है या नरक है यह हमारा घर है। यदि किसी को यह नरक दिखाई पड़ता है तो उसको यह न भूल जाना चाहिए कि इस नरक का द्वार जिस प्रकार आनेवालों के लिए खुला है उसी प्रकार जानेवालों के लिए भी खुला है।"

इतना कहकर शान्तादेवी कटपट करती हुई कमरे के बाहर हो गई। मि० सिनहा और फूफा जी दोनों अवाक् बैठे ताकते रहे।

कुछ क्षणों पश्चात् मि० सिनहा गला साफ़ करके बोले—"फूफा जी, मैं भी आपसे यह कहने वाला ही था कि हमारे यहाँ मुसलमान बावर्ची है।"

मि० सिनहा धड़कते हुए हृदय से इस बात की प्रतीक्षा करने लगे

कि फूफा जी इस पर क्या कहते हैं।

फूफा जी कुछ क्षणों तक विचारमग्न रह कर बोले—"बात यह है कि, हम लोग अभी इतने आगे नहीं बढ़े हैं कि जिसके हाथ का चाहे खालें; और तुम्हें भी मैं यही सलाह दूँगा कि अभी इतने आज़ाद मत बनो।"

"मैं तो इन बातों को वाहियात समझता हूँ। छूतछात में कुछ नहीं रक्खा है। महात्मा गांधी को देखिये।"

"महात्मा जी की बात जाने दो। समरथ को नहि दोष गुसाईं।"

"खैर! आप के लिए हिन्दू का प्रबन्ध कर दिया जायगा।"

फूफा जी चुप हो गये।

(४)

उस दिन से बुआ जी तथा शान्तादेवी में कुछ मनोमालिन्य हो गया। बुआ जी अपना तथा अपने पति का भोजन दोनों समय स्वयम् बनाती थीं। फूफा जी से भी शान्तादेवी यथाशक्ति दूर ही दूर रहती थीं। शान्तादेवी को यह आशा थी कि कम से कम फूफा जी तो इस दक़िया-नूसी विचारों से मुक्त होंगे; परन्तु जब उन्हें पता लगा कि फूफा जी भी पुराने ख़यालात के आदमी हैं तो उनका चित उनसे भी रुष्ट हो गया।

फूफा जी के आने के तीसरे-चौथे दिन शान्तादेवी मि० सिनहा से बोलीं—"आख़िर ये लोग यहाँ क्यों पड़े हैं?"

मि० सिनहा नेत्र विस्फारित करके बोले—"पड़े हैं! माई डियर यह तुम क्या कहती हो!"

"पड़े नहीं तो और क्या हैं?"

"छिः, छिः, तुम समझदार होकर ऐसी बातें करती हो! हमारे आत्मीय हैं, रिश्तेदार हैं, भाई हैं! फूफा जी हम लोगों से कितना

स्नेह करते हैं। हमारे स्नेह के कारण ही हमारे यहाँ रह रहे हैं—यद्यपि यहाँ का वातावरण उनकी प्रकृति के प्रतिकूल है। वह कुछ हमारे यहाँ 'पढ़ने' नहीं आये हैं। ईश्वर की दया से वह कुछ भूखे नंगे नहीं हैं जो हमारे यहाँ दिन काटने आये हों। हमारे स्नेह के कारण ही वह यहाँ आ गये हैं।

"जो हमारे आचार-विचारों से घृणा करता है वह हमारे यहाँ रहता ही क्यों है!"

"आचार विचारों की विभिन्नता से प्रेम तथा रिश्तेदारी का संबंध नहीं टूट सकता। फूफा जी इस तत्व को समझते हैं इसीलिए वह यहाँ रह रहे हैं।"

"मैं तो ऐसी जगह एक क्षण भी न रहूँ।"

"शायद।"

"शायद नहीं, निश्चय! शायद!—जैसे तुम दब्बू हो वैसा दूसरों को भी समझते हो।"

मिस्टर सिनहा चुप हो गये।

उसी दिन शाम को हिन्दू-मुसलिम दंगा छिड़ गया। दूसरे दिन सबेरे बावर्ची नहीं आया। बेरा ने मि० सिनहा से कहा—"हुज़ूर, खानसामा नहीं आया!"

मिस्टर सिनहा के पास ही शान्तादेवी बैठी थीं। यह तुनक कर बोलीं—"क्यों नहीं आया?"

"शहर में दंगा हो रहा है, इसलिए कैसे आवे!" बेरा ने कहा।

"मैंने इनसे न जाने कितनी बार कहा कि उसे यहीं रहने की जगह दे दो, पर वह ऐसे ज़िद्दी आदमी हैं कि अपने आगे मेरी एक नहीं सुनते!"

"सरकार ने तो कई बार उससे कहा, पर वह रहने को राज़ी ही

नहीं हुआ।"—बेरा बोला।

"माई डियर, तुम बहुत जल्दी राय बना लेती हो। यह तुमने कैसे समझ लिया कि मैंने उससे नहीं कहा?"

शान्तादेवी कुछ खिसिया कर बोली—"तो ऐसे आदमी को रखना ही नहीं चाहिए था! यदि मैं होती तो उसके इन्कार करने पर तुरन्त उसे निकाल बाहर करती। यह रियायत कर गये। यही इनमें ऐब है। तुम लोगों में से कोई खाना बनाना नहीं जानता?"

"हम लोग क्या जाने हुज़ूर! कभी बनाया नहीं।"

"तब क्या होगा? होटल की शरण लेनी पड़ेगी!"

"इसके सिवा और हो ही क्या सकता है।" मिस्टर सिनहा बोले।

"होटल में खाना तो बड़ी बेइज़्ज़ती की बात है—"

"तो फिर क्या हो—तुम बताओ।"

"ऊँहुँ। मुझसे खाना-वाना नहीं बनेगा।"

"तो फिर होटल में खाने के सिवा उपाय नहीं, या हलवाई के यहाँ से मँगाओ।"

"हलवाई की दूकानें भी शायद ही खुली हों! यहाँ सिविल लाइन्स में पता नहीं लगता—शहर में इस बखत हायतोबा मची है।" बेरा बोला।

"हलवाइयों के यहाँ का गन्दा खाना मैं खा भी नहीं सकती।" शान्तादेवी मुँह बनाकर बोलीं।

"तब तो फिर होटल ही चलना पड़ेगा।"

शान्तादेवी चुप रहीं।

मि० सिनहा बेरा से बोले—"देखो—होटल को फ़ोन कर दो कि दो आदमियों का खाना तैयार रक्खें।"

बेरा चला गया। कुछ क्षणों पश्चात् लौटकर बोला :—

"होटल तो बन्द है सरकार ! वहाँ कोई नौकर नहीं आया । गोश्त की दूकानें बन्द हैं, गोश्त भी नहीं मिल सकता। इसलिए होटल बंद है।"

"अच्छा दूसरे होटल से पूछो ।" मि० सिनहा बोले ।

"वह भी बन्द होगा । ख़ाली छावनी के होटल खुले होंगे—कहिये वहाँ टेलीफ़ून करूँ !" बेरा ने कहा ।

"लेकिन वहाँ तो बिलकुल अँग्रेज़ी ख़ाना मिलेगा ।"

"हाँ और क्या ।"

"क्यों, अँग्रज़ी खाना खाओगी ?"

"नहीं ! न मैं वहाँ जाऊँगी, न वहाँ का खाना खाऊँगी ।"

"तो फिर क्या खाओगी ?"

"घर में कुछ है ?"

"दो एक पाव रोटी पड़ी होंगी और दूध है ।" बेरा ने कहा ।

"बिस्कुट भी है । परन्तु बिस्कुटों से पेट क्या भरेगा !" मि० सिनहा बोले ।

"तो इस समय पावरोटी और दूध से गुज़र कर लेंगे—शाम को देखा जायगा, लेकिन देखो, फूफा जी और बुआ जी को यह पता न लगे कि हम लोगों का खाना नहीं बना ।" शान्तादेवी बोली। दोनो ने पाव रोटी और दूध का आहार किया।

मि० सिनहा बोले—"अब ज़रा मैं मिल हो आऊँ—"

"मिल तो बन्द है ?"

"हाँ ! ज़रा ऐसे ही देख-भाल आऊँ—यहाँ बैठे ही क्या करूँगा।"

इसी समय फूफा जी आ गये । उन्होंने कहा :—

"सुना है कि शहर में दंगा हो गया ।"

"हाँ बड़े ज़ोर का दंगा हो रहा है ।"

कुछ देर तक दंगे पर बातचीत होती रही ।

सहसा शान्तादेवी बोली—"आपने भोजन कर लिया फूफा जी !"

"हाँ ! हाँ ! अभी भोजन करके ही आ रहा हूँ।"

शान्तादेवी ने ईर्षा-भरी दृष्टि से फूफा जी को देखा।

कुछ क्षणों तक चुप रहकर शान्तादेवी ने पूछा—"आज क्या-क्या बना था ?"

अन्य दिन शान्तादेवी को यह जानने की उत्सुकता कभी नहीं हुई कि बुआ जी और फूफा जी क्या बनाते-खाते हैं।

फूफा जी बोले—"गोश्त तो आज मिला नहीं। इसलिए खाली दो साग बना लिये थे, गोभी आलू और मटर पालक—माश की दाल थी। चावल और रोटी।"

शान्तादेवी के मुँह में पानी भर आया और उनकी दबी हुई क्षुधा जागृत हो गई।

"साग सब्ज़ी का स्टाक तो हमारे यहाँ काफ़ी है।" मि० सिनहा बोले।

'हाँ, अभी तीन चार दिनों के लिए तो है। पालक तो बँगले में ही लगी है—गोभी भी है। आलू तीन चार दिनों के लिए हैं। मटर भी है।" फूफा जी बोले।

संध्या होते होते क्षुधा के मारे शान्तादेवी व्याकुल हो गई। मि० सिनहा मिल से चार बजे के करीब लौटे।

शान्तादेवी ने पूछा—"बड़ी देर लगाई ?"

"मिल से तो मैं एक घंटे बाद ही लौट पड़ा था परन्तु लौटते समय मि० शर्म्मा के यहाँ चला गया, तब से अब तक वहीं रहा। उन्होंने खाना भी खिलाया।"

शान्तादेवी एक दम भभक उठी—"एँ ! तुम खाना भी खा आये जब कि मैं भूखी मरी जा रही हूँ।"

"क्या कहूँ माई डियर ! उन्होंने पूछा तो मैं इन्कार न कर सका—भूख बड़े ज़ोर से लगी थी। शर्मा की पत्नी अच्छा खाना बनाती है। बड़ा लज़ीज़ खाना था।"

"तुम अच्छे पति हो कि ख़ुद खा आये और मेरा कुछ ख़याल न किया ! बड़े शर्म की बात है !"

"तुम अच्छी पत्नी हो कि खाना तक नहीं बना सकतीं ! घर में खाना बनाने का सब सामान मौजूद है मगर बना नहीं सकतीं ! यह शर्म की बात नहीं है ? जब कि स्त्री का मुख्य काम खाना बनाना ही है। यदि स्त्री अटके-भिटके खाना भी नहीं बना सकती तो वह और किस मर्ज़ की दवा है—यह मेरी समझ में नहीं आता।"

इतना सुनते ही शान्तादेवी के तलुवों से लगकर सिर में बुझी। वह चंडिकारूप धारण करके बोली—"हाँ मैं नहीं बनाऊँगी। नहीं बनाऊँगी ! क्यों बनाऊँ ? तुम आनन्द से मित्रों के यहाँ खाओ। मैं भूखी मर जाऊँगी। तुम्हारी बला से।"

इतना कहते-कहते शान्तादेवी रोने लगीं। उन्होंने अपने बाल नोच डाले, साड़ी फाड़ डाली और बकती-झकती अपने कमरे में चली गईं। मि० सिनहा सिर झुकाये बैठे रह गये।

थोड़ी देर पश्चात् मि० सिनहा अपनी बुआ जी के पास पहुँचे। कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करके बोले—

"आज हम लोग आपका बनाया खाना खायँगे, बुआ जी !"

बुआ जी प्रसन्न मुख होकर बोलीं—"बड़ी अच्छी बात है बेटा ! मेरे धन्य भाग ! पर मेरा बनाया खाना तुम्हें पसंद क्यों आवेगा ?"

"आवेगा !"

बातचीत के सिलसिले में मि० सिनहा ने सब वृत्तान्त कह दिया। बुआ जी बोलीं—"अरे राम राम ! बहू को बड़ा कष्ट हुआ। मुझ से क्यों

न कहा, मैं दोबारा बना देती।"

यह कह कर बुआ जी दौड़ी हुई शान्तादेवी के पास पहुँचीं। शान्ता-देवी तकियों में मुँह छिपाये पड़ी सिसकियाँ ले रही थीं। बुआ जी ने उन्हें उठाते हुए कहा—"अरे बेटी! तू ने मुझसे क्यों नहीं कहा! मैं तो यह समझी कि खा-पी लिया होगा। राम राम! ऐसा कोई करता है! घर में ऐसा सकोच नहीं करना चाहिए।"

शान्तादेवी बुआ जी की छाती में मुँह लुका कर खूब रोईं। कुछ भूख, कुछ क्रोध, कुछ लजा इन सब ने मिल कर आँसुओं का बाँध तोड़ दिया। शान्तादेवी का सारा घमण्ड, सारी ऐंठ, सारी शेख़ी-शान आँखों की राह बह गई।

* * *

संध्या समय जब शान्तादेवी बुआ जी का बनाया भोजन करके उठीं तो बोली—"ऐसा स्वादिष्ठ भोजन कभी नहीं किया। ऐसे बढ़िया पराठे तो हमारा बावर्ची भी नहीं बना सकता।"

फूफा जी बोले—"बावर्ची तुम्हारा ख़ाक जानता है। हाँ, अण्डे-मुर्ग़ी या दो एक अँग्रेज़ी चीज़ें अच्छी बना लेता होगा। हम लोगों का खाना बनाना वह क्या जाने!"

"अच्छा तो कल सुबह मैं बनाऊँगी, बुआ जी। लेकिन तुम बताती जाना। इधर पाँच-छः बरसों से कुछ भी नहीं बनाया इसलिए अभ्यास छूट गया।" शान्तादेवी बड़े प्रेम से बोलीं।

"हाँ हाँ तुम्हीं बनाना। तुम्हें अपने हाथ से बनाने का शौक़ पड़ जाय तो फिर तुम किसी दूसरे का बनाया पसंद ही न करो। मुझे तो अपने हाथ का बनाया ही अच्छा लगता है और तुम्हारे फूफा जी का भी चित्त मेरे ही बनाये खाने से भरता है।"

बुआ जी एक मास के लगभग रहीं। इतने दिनों में [illegible] शान्ता-

देवी को भोजन बनाने में प्रवीण कर दिया।

अब आजकल शान्तादेवी अपना भोजन स्वयम् ही बनाती हैं। मि० सिनहा की मण्डली में यह बात प्रसिद्ध है कि मिसेज़ सिनहा बहुत बढ़िया भोजन बनाती हैं। मि० सिनहा को इस बात पर बड़ा गर्व है और शान्तादेवी तो अपने को साक्षात् अन्नपूर्णा ही समझती हैं।